दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ **तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार,** भावनगर वर्ष २५ अंक नं० १

चैतन्यचिन्तामणि की प्राप्ति

विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर भगवान की जिस वाणी का कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने साक्षात् श्रवण किया था, उसी वाणी का प्रसाद आज हमें प्राप्त हो रहा है, यह कितने महान सौभाग्य की बात है! अहा, उस दिव्यध्वनि ने जो शुद्धात्मा दर्शाया था, उसे आज भी हम अन्तर में देखें और उस वाणी का रहस्य पा सकें, ऐसा अपूर्व उपदेश आज एक भावी तीर्थंकर हमें साक्षात् सुना रहे हैं। वाह! आत्महित का कैसा अपूर्व सुयोग प्राप्त हुआ है! पूज्य गुरुदेव के प्रताप से हमें आत्मानुभूति की प्राप्ति विदेहक्षेत्र के जीवों जैसी ही सुगम हो गई है!

अहो साधर्मीजनों! ऐसे रत्नचिन्तामणि को प्राप्त करके हम उसके द्वारा अपने मनवांछित चैतन्यचिन्तामणि की प्राप्ति करें।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

स्वागत है गुरुदेव आपका

रत्नत्रयवरदः शतं जीव शरदः

गुरुदेव का आशीर्वाद

यहाँ पूज्य स्वामीजी के आशीर्वादरूप उनके पवित्र हस्ताक्षर दिये जा रहे हैं, जो हमें अमूल्य चिन्तामणि बतलाते हैं:—

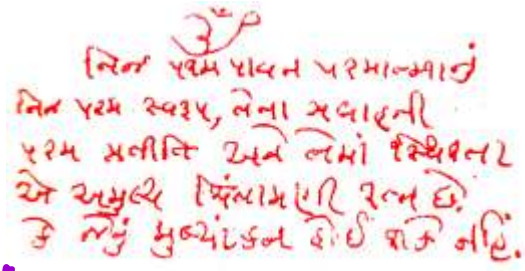

जिसप्रकार कोई जौहरी हाथ में लेकर मूल्यवान रत्न दिखाये, उसीप्रकार यहाँ गुरुदेव स्वहस्ताक्षर द्वारा अमूल्य चिन्तामणि रत्न दर्शाते हैं। हस्ताक्षर के प्रारम्भ में ही ॐ द्वारा समीप में सुनी हुई भगवान की दिव्यध्वनि का स्मरण किया है, और पश्चात् उस दिव्यध्वनि के महासागर में से एक अमूल्य रत्न ढूँढ़कर दे रहे हों, इस प्रकार लिख दिया है कि—''निज परम पावन परमात्मा का निज परमस्वरूप, उसके प्रवाह की परम प्रतीति और उसमें स्थिरता, वह अमूल्य चिन्तामणि रत्न है; कि जिसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।''—ऐसे अमूल्य चिन्तामणि को हाथ में रखकर आत्मा के जिस किसी वैभव का चिन्तन किया जाता है, वह उसी क्षण प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जगत के सर्वोत्कृष्ट रत्नों का इस चिन्तामणि में समावेश हो जाता है, तथा अन्य अनंत गुणों की निर्मलतारूपी अनंत रत्न भी उसमें आ जाते हैं।—उसमें निःशंक प्रतीति और स्थिरता के बिना अन्य किसी प्रकार उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। गुरुदेव द्वारा बतलाये गये ऐसे चिंतामणि रत्न को हम शीघ्र प्राप्त करें, यही भावना। —संपादक

तुम्हारे पग-पग पर गुरुदेव, बह रही आतमरस की धार!

[३]

अहमदाबाद और रणासण में पंच कल्याणक महोत्सवों के पश्चात् बीच में सोनगढ़ विश्राम लेकर राजकोट में अध्यात्म-रस की अमृतधारा बरसाते हुए पूज्य गुरुदेव सुरेन्द्रनगर, अहमदाबाद, पालेज, सूरत, कासा, थाणा होकर वैशाख कृष्णा ११ तारीख १२-४-६९ को बम्बई नगरी में पधारे। मूसलाधार चैतन्यरस की वर्षा के बीच गुरुदेव का ८०वाँ जन्मदिवस रत्नचिन्तामणि महोत्सव के रूप में उल्लासपूर्वक मनाया गया और जिनेन्द्र भगवंतों की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आनन्दकारी महोत्सव भी धामधूम से हर्षोल्लास के बीच समाप्त हुआ। ऐसे महामंगल कार्यों को देखने से आनन्दपूर्वक धर्म भावनाएँ पुष्ट होती हैं। पूज्य गुरुदेव के मंगल-यात्रा के कुछ संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं। इन्हें पढ़कर जिज्ञासुओं को आनंद होगा।

राजकोट में पूज्य गुरुदेव ९ दिन रहे और नियमसार गाथा ३८, ५०, १५९, १६५; पंचास्तिकाय गाथा १६३, समयसार कलश १२०, २५२, २७१ तथा समयसार गाथा १३ आदि विविध विषयों पर सुंदर प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा हुई। चैत्र शुक्ला १२ के दिन 'ज्ञानचक्षु' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ और चैत्र शुक्ला १३ के दिन भगवान महावीर का जन्मोत्सव मनाने के पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल पूज्य गुरुदेव ने सुरेन्द्रनगर की ओर विहार किया। वहाँ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन जिनमन्दिर पर कलशारोहण हुआ। वैशाख कृष्णा एकम के दिन पुनः गुरुदेव अहमदाबाद पधारे और नव-प्रतिष्ठित आदिनाथ भगवान के दर्शन किये। प्रवचन तथा भक्ति भी वहीं जिनमंदिर में हुई। वैशाख कृष्णा दोज के दिन बड़ौदा होते हुए पालेज पधारे। चिर-परिचित भूमि में प्रवेश करते हुए पूज्य गुरुदेव की ६० वर्ष पुरानी स्मृतियाँ सजग हो उठीं। पूज्य गुरुदेव वि. सं. १९५९ से १९६८ तक पालेज में रहे थे। पालेज आते ही अनंत शक्तिसम्पन्न

भगवान श्री अनंतनाथ जिनेन्द्र के दर्शन करके गुरुदेव ने अर्घ चढ़ाया, और पश्चात् मंगल-प्रवचन में शरीर से भिन्न आत्मा की महिमा बतलाते हुए कहा कि—ऐसे भगवान आत्मा का अनादिकालीन अज्ञान के कारण जो विस्मरण हुआ है, वह अमंगल है—दु:ख है, और सत्समागम से आत्मा का श्रवण करके उसका स्मरण करना, उसे पहिचानना, उसकी महिमा करना, सो मंगल है और ऐसा मंगल, वह मोक्ष का कारण है।

दोपहर को समयसार गाथा १७-१८ पर सुगम-शैली में प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेव ने राजा के दृष्टांत से जीव को पहिचान कर उसकी सेवा करने का (अर्थात् उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुचरण करने का) उपदेश दिया। प्रभो! बाहर की अन्य बातें (राग की बातें) तो तूने अनंत बार सुनी हैं, इसलिये वे तुझे सुगम-सरल मालूम होती हैं, परंतु रागरहित शुद्ध ज्ञानानंद आत्मा क्या वस्तु है, उसका श्रवण कभी ज्ञानियों के निकट रहकर नहीं किया, समझने का प्रयत्न नहीं किया, इसलिये कठिन मालूम होता है; परंतु उसे समझना ही होगा। भाई, इस मनुष्यभव में तो यही समझने योग्य है... एक क्षण में शरीर छूट जाता है; मनुष्य अवतार प्राप्त करके यदि अपने आत्मा की रुचि-प्रतीति नहीं की तो क्या किया?... तू बाह्य विषयों का, धन का, राग का अर्थी हुआ, परंतु आत्मा का अर्थी न हुआ तो तेरे भवभ्रमण का अंत नहीं आयेगा।

वैशाख कृष्णा ४ के दिन प्रवचन के पश्चात् भगवान की रथयात्रा निकली थी और दोपहर को दुकान में भक्ति हुई थी; चैतन्य का व्यापार करनेवाले गुरुदेव ने दुकान में ज्ञान-वैराग्य के दो शब्द कहे थे कि अनादि से परिभ्रमण करता हुआ आत्मा तो मुसाफिर जैसा है, यह सब संयोग उसे छाया की भाँति हैं, वे कहीं उसका स्वरूप नहीं हैं। संयोगों से भिन्न अनादि से ध्रुव विद्यमान आत्मा, उसका सच्चा व्यापार ज्ञान है; ऐसे आत्मा को ध्रुव चिदानंदस्वरूप से जानना, वह अपूर्व कल्याण है और वह करनेयोग्य है। संयोग छाया समान हैं और आत्मा उनका ज्ञाता है; आत्मा अपने स्वभाव को तथा पर को जाने, ऐसा उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है; उसका चैतन्य-व्यापार संयोग से तथा राग से भिन्न है। पालेज में गुरुदेव चार दिन रहे और आनंदपूर्वक विविध चर्चायें कीं। इस अवसर पर घाटकोपर की भजन-मंडली भी आयी थी जिससे सारा वातावरण भक्तिपूर्ण बन गया था। 'श्रुतधाम' अंकलेश्वर और 'शीतलधाम' सजोद दोनों पालेज के निकट करीब पच्चीस मील दूर हैं। अंलेकश्वर पधारकर सत्श्रुत की ज्योति को अखंड रखनेवाले परम संत भूतबलि मुनिराज (जिन्होंने अंकलेश्वर में

षट्खंडागम की रचना पूर्ण की और श्रुत का भव्य उत्सव मनाया)—वे अंकलेश्वर जाते-आते पालेजनगर में अवश्य पधारे होंगे... पालेज में उन श्रुतधर संतों का भी स्मरण होता था। कितने ही मुमुक्षु भाई-बहिन पालेज से अंकलेश्वर और सजोद दर्शन करने गये थे। अहा, उन श्रुतधर संतों की वह भूमि!—रत्नत्रयधारी संतों की कैसी महिमा प्रगट करती है। और गुफा में विराजमान वे शीतलता के भंडार शीतल जिनेन्द्र चैतन्य में कैसी शीतल ऊर्मियाँ जागृत करते हैं!! वे प्रतिमाजी चौथे काल की मालूम होती हैं। चार प्राचीन जिनमंदिरों में भी अनेक विशेषताओं सहित जिनबिम्ब विराजमान हैं। नेमप्रभु के मंदिर में पार्श्वनार्थ प्रभु को कलाकार ने अंतरिक्ष बतलाया है, वह दृश्य सुंदर है। इसके सिवा पींछी-कमंडल सहित मुनिवरों की प्राचीन प्रतिमाएँ भी यहाँ देखने को मिलती हैं। संभव है कि उनका संबंध धरसेन-पुष्पदंत-भूतबलि मुनिवरों के साथ हो। महावीर भगवान के मंदिर में जिस स्थान षट्खंडागम सिद्धांत की रचना पूर्ण होना माना जाता है, वहाँ स्मृतिरूप एक छोटा-सा मंदिर है—जो श्रुतपंचमी की पूजा के समय अंबिकादेवी द्वारा हुई मुनिपूजा की स्मृतिरूप हो—ऐसा देखने से प्रतीत होता है।

पालेज के बाद गुरुदेव सूरत पधारे और वहाँ भावभीना स्वागत हुआ। वहाँ से कासा आये... गुजरात छोड़कर अब गुरुदेव ने महाराष्ट्र में प्रवेश किया था। कासा में वन-जंगल के वातावरण के बीच गुरुदेव ने दिन व्यतीत किया और इस भव तथा परभव की कुछ आनंदकारी बातें कहीं। गुरुदेव के श्रीमुख से धर्मात्माओं के जीवन की कथा सुनकर भक्तों को आनंद होता था। कासा से बम्बई के लिये प्रयाण करने से पूर्व रात्रि के अंतिम प्रहर में गुरुदेव ने एक अत्यंत आह्लादकारी मंगल-स्वप्न देखा कि आकाश में से किसी ने बधाई सहित एक लिफाफा उनकी ओर फेंका और वह उनके हाथ में आ गया। ऐसा अद्भुत लिफाफा हाथ में आते ही गुरुदेव अत्यंत आनंदित हुए मानों भगवान का कोई संदेश आया हो! अतिशय आह्लादपूर्वक गुरुदेव ने वह स्वप्न की बात करते हुए कहा कि—उस समय ऐसा आनंद हुआ मानों मोक्ष ही हाथ में आ गया हो! मानों मोक्ष की लाटरी लग गई हो! गुरुदेव ने बड़ी सावधानी से उस लिफाफे को एक कोना खोला और पढ़ने की तैयारी करते हैं इतने में तो आँख खुल गई...! गुरुदेव कहते हैं कि अद्भुत था वह स्वप्न! मानों किसी उत्तम मंगल-फल की वह पूर्वसूचना हो! ऐसे आह्लादपूर्वक विदेहीनाथ सीमंधर भगवान का बारंबार स्मरण करते तारीख ११-४-६९ के प्रातः गुरुदेव थाना पहुँचे। थाना में श्री पोपटलाल मोहनलाल वोरा तथा उनके समस्त परिवार ने

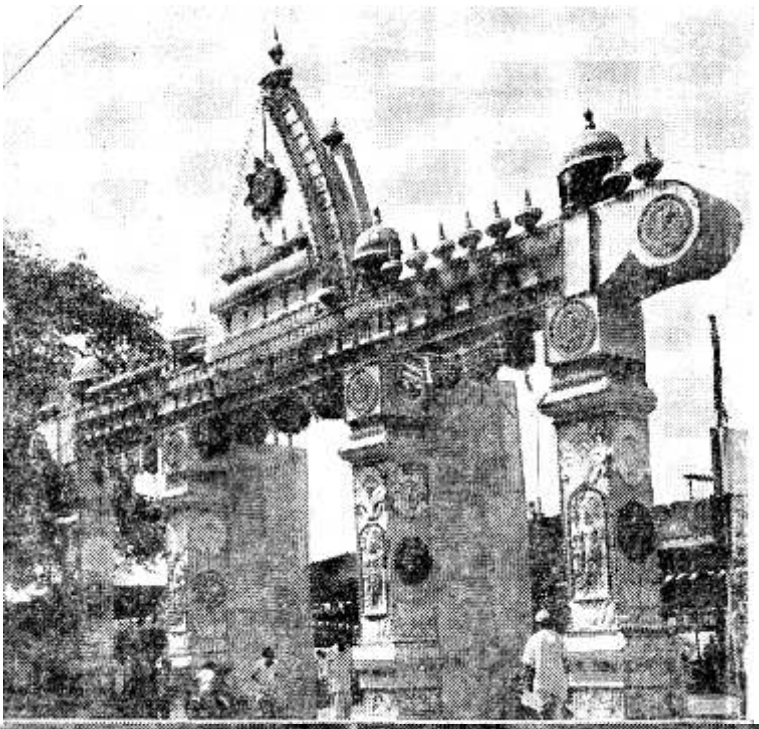

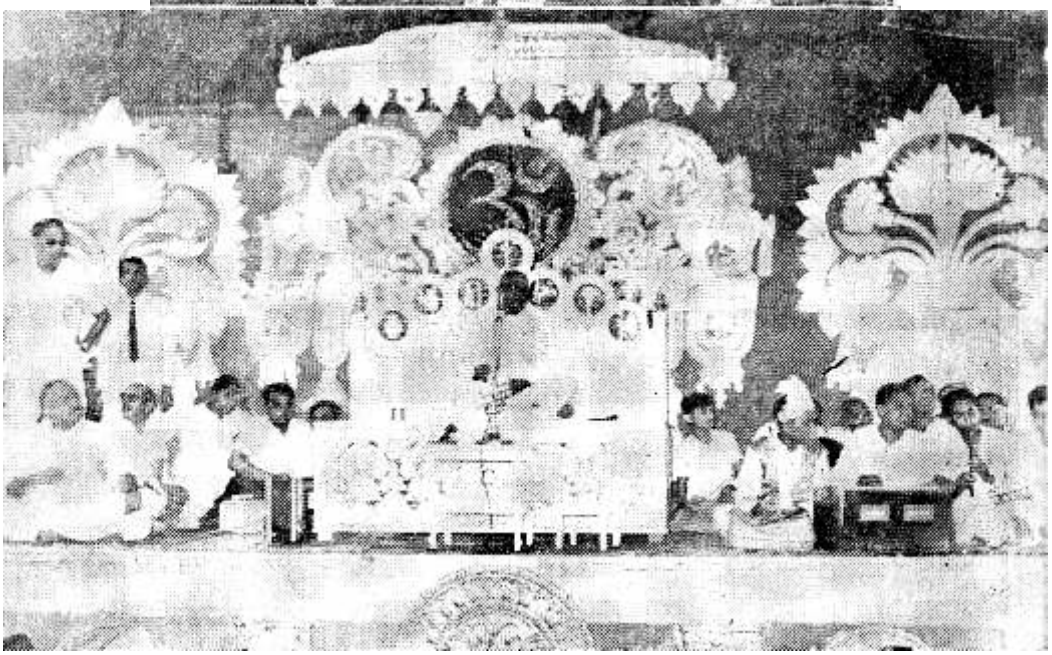

[फोटो : पुनम सेठ, बम्बई]

बम्बई में पूज्य गुरुदेव का मंगल-स्वागत और महावीरनगर का ७५ फुट ऊँचा प्रवेशद्वार

अत्यंत भक्ति से पूज्य गुरुदेव का स्वागत किया और यथाशक्ति लाभ लिया। दूसरे दिन वैशाख कृष्णा ११ तारीख १२-४-६९ के प्रात:काल गुरुदेव ने थाना से प्रस्थान किया और घाटकोपर के नूतन जिनमंदिर का निरीक्षण करते हुए गुरुदेव की मंगलवर्धिनी पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार रे रोड पर श्री हिम्मतलाल छोटालाल के कारखाने 'वीनस मेन्युफैक्चरिंग' में पहुँची और वहाँ गुरुदेव ने दूध लिया। श्री हिम्मतभाई, श्री चिमनभाई तथा उनके परिवार ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत किया। वहाँ से पूज्य गुरुदेव झबेरी बाजार जिनमंदिर पहुँचे जहाँ बम्बई के तथा बाहर से आये हुए हजारों लोग गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे और उनका स्वागत करने के लिये उत्सुक थे। सर्वप्रथम गुरुदेव ने जिनमंदिर में जाकर श्री सीमंधर भगवंतों के दर्शन किये और पश्चात् स्वागत-यात्रा प्रारंभ हुई जो मुख्य मार्ग से होकर आजाद मैदान में निर्मित 'महावीरनगर' पहुँची।

महावीरनगर में करीब ७५ फुट ऊँचा प्रतिष्ठा-मंडप का भव्य प्रवेश-द्वार जिज्ञासुओं को आकर्षित कर रहा था और उसके शिखर पर २४ तीर्थंकर भगवंतों की कतार मानों प्रवेशक पर आशीर्वाद बरसाती थी। प्रवचन की व्यासपीठ भी ऐसी ही नयनरम्य एवं मनोहारी थी... जिस पर से होनेवाली गुरुवाणी की गर्जना मोहनगरी के मोह को ढीला कर देती थी। हजारों नर-नारी मुग्ध होकर उस वाणी का श्रवण करते थे। प्रतिदिन प्रात:काल श्री 'समयसार' कर्ताकर्म अधिकार पर गुरुदेव का प्रवचन होता था, जिसमें वे परभावों से ज्ञान की अत्यंत भिन्नता समझाकर भेदज्ञान कराते थे और बम्बई की उकताहट के बीच शांत अध्यात्म-रस का सागर उल्लसित करके श्रोताओं को चैतन्य की शीतलता प्रदान करते थे। दोपहर को 'श्री ऋषभजिनस्तोत्र' के प्रवचन द्वारा भगवान ऋषभदेव के जन्म से केवलज्ञान तक का अद्भुत भावभीना वर्णन करके भक्तिरस की वीतरागी गंगा बहाते थे। पाँच दिन की अद्भुत अमृतवर्षा ने बम्बई के हजारों जिज्ञासुओं को खूब आकर्षित किया और वैशाख शुक्ला एकम आ पहुँची आज से जिनेन्द्र भगवान के पंच कल्याणक-महोत्सव का प्रारंभ हुआ।

प्रात:काल मंगल-मुहूर्त के रूप में नांदीविधान (मंगलकुंभ स्थापन) सेठ श्री रमणीकलाल जेठालाल की धर्मपत्नी सौ० प्रभावतीबेन के हस्त से हुआ। तत्पश्चात् प्रतिष्ठा-मंडप में जिनेन्द्र भगवंतों को विराजमान किया गया और भाई श्री हीरालाल भीखाभाई शाह (दहेगामवालों) के हस्त से जैन झण्डारोहण हुआ। बम्बई के आँगन में जिनेन्द्र भगवान के पंच

कल्याणक महोत्सव का प्रारंभ होता देखकर हजारों भक्तों के हृदय हर्षविभोर हो उठे। गुरुदेव का प्रवचन पूर्ण होने पर इन्द्रप्रतिष्ठा हुई। प्रथम उत्सव के लिये गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर बारह इन्द्र-इन्द्राणियों की, कुबेर की तथा भगवान के माता-पिता की स्थापना हुई। पंच कल्याणक के दृश्य भगवान महावीर के होना थे; पिता सिद्धार्थ एवं माता त्रिशला बनने का सौभाग्य भाईश्री रमणीकलाल जेठालाल सेठ तथा उनकी धर्मपत्नी सौ० प्रभावतीबेन को प्राप्त हुआ था। सौधर्म इन्द्र के रूप में सेठ श्री पोपटलाल मोहनलाल वोरा के सुपुत्र श्री हसमुखभाई, तथा ईशान इन्द्र के रूप में सेठ श्री पूरणचंद्रजी गोदीका जयपुरवाले थे। इन्द्रों की प्रतिष्ठा के पश्चात् धामधूम से जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये इन्द्रों की सवारी निकली और उन्होंने प्रतिष्ठा-मंडप में आकर पंच परमेष्ठी भगवंतों की पूजा की। उत्सव की विविध तैयारियाँ महावीरनगर में हो रही थीं... इतने में पूज्य गुरुदेव का रत्नचिन्तामणि जन्मोत्सव देखने के लिये वैशाख शुक्ला दोज आयी और सीमंधर भगवान का संदेश लायी... साथ में कुन्दकुन्द प्रभु का आशीर्वाद भी लायी.....

❁ ❁ ❁ ❁

बम्बई नगरी में रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव

धन्य हुई बम्बई नगरी और धन्य हुए भक्त....वैशाख शुक्ला दोज को गुरुदेव का ८०वाँ जन्मोत्सव आनन्दोल्लासपूर्वक रत्नचिन्तामणि महोत्सव के रूप में मनाया गया। प्रात:काल ही अनेक भक्त गुरुदेव के जन्म की मंगल-बधाई लेकर आ पहुँचे और रत्नों से पूज्य गुरुदेव को बधाई दी। सर्वप्रथम गुरुदेव अपने परम प्रिय सीमंधरनाथ का आशीर्वाद लेने के लिय जिनमंदिर गये... उस समय शुभ शकुनरूप में सामने से जन्म-मंगल गाती हुई प्रभातफेरी उन्हें

सामने मिली। जिनमंदिर में जाकर पूज्य गुरुदेव ने सीमंधरनाथ के दर्शन किये, अर्घ चढ़ाया और रत्नों से भगवान की आरती की। गुरुदेव के साथ भगवान के दर्शन करते हुए भक्तों को आनंद हो रहा था! तत्पश्चात् गुरुदेव महावीरनगर के मंडप में पधारे। आज मंडप की शोभा अद्भुत थी! जब बम्बई नगरी सो रही थी और रास्ते सुनसान थे, उस समय महावीरनगर का मंडप जन्म की बधाइयों से गूँज रहा था। मंडप चारों ओर से जगमगा रहा था और उसके प्रवेश द्वार पर चौबीसों भगवान मानों एक साथ पधारकर गुरुदेव पर आशीर्वाद बरसा रहे थे। ज्यों ही गुरुदेव प्रवेश द्वार पर आये कि तुरंत हाथी ने सात बार सूँढ़ उठाकर चंदनहार से गुरुदेव का स्वागत किया; शहनाई की ध्वनि वातावरण में गूँज उठी और हजारों भक्तों के जय-जयकार से मंडप गूँज उठा। गुरुदेव सुशोभित पाठपीठ पर आकर विराजमान हुए और सबने स्तुति-मंगलपूर्वक जन्मोंत्सव का आह्लाद व्यक्त किया। बम्बई का समुद्र भी मानों इस रत्नाकर का गुणगान कर रहा हो, इसप्रकार धीर-गंभीर मधुरनाद से लहरा रहा था। आज के इस मंगल अवसर पर केवलज्ञानादि परम ऋद्धिधारी संतों का स्मरण करके चौंसठ ऋद्धि मंगल-विधान हुआ था। प्रवचन से पूर्व पूज्य गुरुदेव के 'जीवन-परिचय' का एक सुंदर अंक गुजराती में प्रकाशित किया गया। जिसप्रकार पाँच वर्ष पूर्व बम्बई में गुरुदेव की हीरक जयंती महोत्सव के उपलक्ष में अभिनंदन-ग्रंथ प्रगट करके तत्कालीन गृहमंत्री स्व. श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा पूज्य गुरुदेव को अर्पण किया गया था, उसीप्रकार इस रत्नचिन्तामणि महोत्सव पर भी कोई सुंदर ग्रंथ प्रगट करने की भावना बम्बई मुमुक्षु मंडल की थी और वह काम उन्होंने श्री ब्रह्मचारी हरिलालजी को सौंपा। श्री हरिलालजी ब्रह्मचारी ने गुरुदेव का विस्तृत जीवन-परिचय तथा गुरुदेव के पवित्र हस्ताक्षरों आदि का संकलन करके वह सुंदर अंक तैयार किया था। आज के मंगल प्रसंग पर वह श्री रमणीकलाल जेठालाल सेठ द्वारा गुरुदेव को अर्पण किया गया। अंक के मुखपृष्ठ पर श्री सीमंधर भगवान के साथ गुरुदेव का संबंध दर्शानेवाला सुंदर दृश्य चाँदी के पत्र में अंकित किया गया है। अंक का लागत मूल्य तीन रुपये होने पर भी मात्र एक रुपये में बेचा जा रहा है।

'जीवन परिचय-अंक' का प्रकाशन होने के पश्चात् श्री समसयसार की ७१वीं गाथा पर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन हुआ।

❁ ❁ ❁ ❁

बम्बई नगरी में वैशाख शुक्ला दोज का मंगल-प्रवचन

रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव उल्लासपूर्वक समाप्त होने के बाद नर-नारियों की विशाल सभा में प्रवचन करते हुए गुरुदेव ने प्रारंभ में ही महिमापूर्वक कहा कि—इस समयसार की आध्यात्मिक चर्चा इस बम्बई जैसी महानगरी में हजारों जिज्ञासुओं के बीच चल रही है, वह जीवों का महान सद्भाग्य है। बड़ा शहर हो या छोटा गाँव हो, परंतु जिसे अपना हित करना है, उसे आत्मा की यह बात अवश्य लक्ष में लेना होगी।

भगवान आत्मा ज्ञान-आनंद की मूर्ति है; उसमें शुभ या अशुभ रागादिभाव होते हैं, वह आस्रव हैं, वह आत्मा का मूल स्वरूप नहीं है, वे तो परोन्मुखता से होनेवाले विकृतभाव हैं, उनकी और ज्ञान की एकता नहीं है परंतु पृथकता है। ज्ञान तो सहज शांत आनंदस्वरूप है और रागादिभाव आकुलतारूप हैं, दु:खरूप हैं। ऐसी भिन्नता को भूलकर जीव ज्ञान और राग दोनों को एकमेक मानकर, उसमें कर्ता-कर्मपना मानता है, इसलिए दु:खी है। उस दु:ख से आत्मा कैसे छूटे ? उसकी यह बात है।

भूल, वह दु:ख है। भूल पर में नहीं है और पर के कारण नहीं है; शरीर में भूल नहीं है। अपने ज्ञानस्वभाव से च्युत होकर रागादि विकार मेरा कार्य—ऐसी मिथ्याबुद्धि, वह दु:ख है। अपने में ऐसा दु:ख जिसे भासित होता है और अब उससे छूटना चाहता है, वह शिष्य जिज्ञासा से पूछता है कि—प्रभो ! ऐसा अज्ञान कैसे दूर हो ? और ज्ञान द्वारा आत्मा इन दु:खमय आस्रवों से कैसे छूटे ?—उसकी रीति बतलाइये।

उसके उत्तर में आचार्यदेव ७१वीं गाथा में आत्मा और आस्रवों की भिन्नता बतलाते हुए भेदज्ञान कराते हैं। आत्महित की यह अद्भुत बात है !

प्रथम तो आत्मा इस जगत में एक स्वतन्त्र वस्तु है और स्वतन्त्र वस्तु अपने स्वभावमात्र ही होती है, इसलिए आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव जितना ही है। ज्ञान के परिणमन में राग का परिणमन नहीं है। आत्मा के ज्ञानस्वभाव का परिणमन होकर उसमें से क्रोधादि की उत्पत्ति नहीं होती और क्रोधादि के परिणमन में से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार दोनों की (ज्ञानस्वभाव की ओर क्रोधादि परभावों की) अत्यन्त भिन्नता है; ऐसी भिन्नता को जानने पर आत्मा उन क्रोधादि का कर्ता नहीं होता; ज्ञानभाव के कर्तारूप ही परिणमित होता है। ऐसा अपूर्व भेदज्ञान, वह मोक्ष की कला है।

[फोटो : पुनम सेठ, बम्बई]

बम्बई में प्रेमपूर्वक परमात्मपद का प्रवचन सुनते हुए श्रोताजन

सीमंधर परमात्मा साक्षात् विराजमान हैं; उनकी दिव्यध्वनि साक्षात् सुनकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! आत्मा ज्ञानरूप रहनेवाला है, वह क्रोधरूप होनेवाला नहीं है। जो क्रोधरूप हो, उसे हम सच्चा आत्मा नहीं कहते। ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा आनंद का धाम है; ऐसे ज्ञानस्वरूप को जो जानता है, अपने को ज्ञानस्वरूप अनुभव करता है, वह राग को अपनेरूप नहीं मानता, राग से भिन्नरूप ही अपने को जानता है। सीमंधर भगवान ने जो कहा, वही कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। सर्वज्ञ की वाणी कहो या संतों की वाणी कहो—दोनों में कोई अंतर नहीं है। भगवान आत्मा ज्ञायकतत्त्व है, वह ज्ञायकतत्त्व कहीं रागादि परभावों से संयुक्त नहीं है परंतु अज्ञानी को वह संयुक्त भासित होता है। अज्ञानी का ऐसा प्रतिभास, वह संसार का बीज है। परभावों से भिन्न शुद्ध आत्मा का प्रतिभास अर्थात् अनुभव, वह मोक्ष का बीज है। भेदज्ञानरूपी दोज उगी, वह बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी ही।

चैतन्यरस की मस्ती में सभा को झुलाते-झुलाते पूज्य गुरुदेव ने कहा कि—सम्यग्दर्शन होने पर धर्मी को अपना आत्मा ज्ञानरूप होता भासित होता है, आनंदरूप होता भासित होता है, परंतु रागरूप या संयोगरूप होता भासित नहीं होता। राग को जानने से मैं रागरूप हो गया अथवा संयोग को जानने से मैं संयोगरूप हो गया—ऐसा ज्ञानी अनुभव नहीं करते; परंतु राग से और संयोग से भिन्नरूप अपना अनुभव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान ने तथा संतों ने जो कहा, वही यहाँ कहा जा रहा है, और जिसे कल्याण करना हो, उसे यह बात मानना ही होगी... फिर आज माने या कल माने; परंतु इसे मानने से ही कल्याण एवं धर्म है।

गुरुदेव का यह भावपूर्ण प्रवचन हजारों श्रोता उल्लासपूर्वक सुन रहे थे और सुनते-सुनते बारंबार हर्षध्वनि करते थे। गुरुदेव भी आज खूब प्रसन्न थे और प्रवचन के बीच-बीच में विदेहीनाथ सीमंधर भगवान को याद कर-करके कहते थे कि यह तो भगवान का आदेश है... भगवान का आदेश तीन काल-तीन लोक में बदल नहीं सकता। करीब पन्द्रह हजार श्रोताजन भगवान के उस आदेश को भक्तिपूर्वक शिरोधार्य करके अपने को धन्य मान रहे थे। मोहनगरी मानों आज अध्यात्मनगरी बन गई थी। नगर में सर्वत्र अध्यात्म की गूँज थी।

आनन्द भरे वातावरण के बीच प्रवचन समाप्त हुआ और जन्मोत्सव की मंगल-बधाई से मंडप गूँज उठा। आज के शुभ दिन मोरबी निवासी भाई श्री यशवन्तराय चन्दुलाल पारेख (हाल-धनबाद) ने तथा अन्य कुछ भाई-बहिनों ने ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा अंगीकार की। पश्चात्

[फोटो : पुनम सेठ, बम्बई]

भीतर स्वभाव में शक्ति भरी है.... उसमें एकाग्र होने से सर्वज्ञपद प्रगट होता है....

समाज की ओर से पूज्य गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सोनगढ़ के विद्वान पंडित श्री हिम्मतलाल जेठालाल तथा दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर के अध्यक्ष श्री नवनीतलाल जवेरी ने गुरुदेव का उपकार व्यक्त किया था। जैन समाज के अग्रणी सेठ श्री श्रेयांसप्रसाद साहू ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। तदुपरांत भाईश्री वाडीलाल चत्रभुज गांधी जो कि श्वेताम्बर जैन समाज के अग्रणी कार्यकर्ता हैं, उन्होंने भी भावभीनी श्रद्धांजलि व्यक्त की थी। पंडित श्री भगवानदासजी तथा पंडित अमृतलालजी ने काव्यों द्वारा अपनी हार्दिक अंजली अर्पित की थी। सूरत निवासी श्री मूलचंद किसनदास कापड़िया जो कि एक वयोवृद्ध समाजसेवी हैं और अनेक वर्षों से समाज की सेवा करते आ रहे हैं, उन्होंने अपनी जोशदार शैली में गुरुदेव का अभिनंदन किया था। तत्पश्चात् भाईश्री प्राणलाल छगनलाल वोर, पंडित श्री बंसीधरजी न्यायालंकार इंदौर, पंडित हीरालालजी शास्त्री ब्यावर; महाराष्ट्र के विद्वान कार्यकर्ता पंडित माणिकचंदजी चवरे कारंजा; तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री श्री चंदुलाल कस्तूरचंद, तथा विद्वान श्री खीमचंद जेठालाल सेठ एवं प्रसिद्ध वक्ता अध्यात्मप्रेमी श्री बाबूभाई फतेपुरवालों ने भी संक्षिप्त भाषण द्वारा गुरुदेव का खूब-खूब उपकार मानते हुए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त की थी। तत्पश्चात् ८०वें रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव के हर्षोपलक्ष में अनेक भाई-बहिनों की ओर से '८०' के मेलवाली रकमों के दान की घोषणा की गई थी। सर्व प्रथम श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी ने १०१×८०=८०८० रुपये की रकम लिखायी और देखते ही देखते करीब सवा लाख रुपये एकत्रित हो गये।

बम्बई में मनाये गये इस रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव की स्थायी स्मृति के रूप में बम्बई दिगम्बर मुमुक्षु मंडल की ओर से निम्नानुसार तीन योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं:—

(१) जिनागम मंदिर:—सोनगढ़ में एक सुंदर हॉल बनवाकर उसकी दीवारों पर संगमरमर पाषाण में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पाँच परमागम श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय तथा अष्टप्राभृत अंकित कराये जायें। जिसका खर्च करीब तीन लाख रुपये होगा। (जन्मोत्सव के फण्ड में आयी हुई रकम का उपयोग इस जिनागम मंदिर के निर्माण में होगा।)

(२) साहित्य प्रकाशन:—गुजराती एवं हिन्दी भाषा के उपरांत मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी साहित्य का प्रकाशन करके उसका प्रचार किया जाये।

(३) जैन विद्यार्थी गृहः—बम्बई (मलाड) में श्री जिनमंदिर के निकट एक जैन विद्यार्थी गृह का निर्माण कराया जाये। जिसका प्रारम्भ माननीय सेठ श्री जुगराजजी की उदार सखावत से हो चुका है।

जन्म-जयन्ती की रात्रि को पूज्य गुरुदेव के जीवन संबंधी विविध घटनाओं से युक्त एक सुंदर नाटक भी प्रदर्शित किया गया था।

वैशाख शुक्ला तृतीया को इन्द्रों ने यागमंडल पूजन विधान किया और भगवान के गर्भकल्याणक की पूर्वक्रिया के दृश्य दिखाये गये। भगवान महावीर का जीव देवलोक से छह महीने बाद तीर्थंकर के रूप में वैशाली के राज सिद्धार्थ के घर रानी त्रिशला देवी की कूख से जन्म लेनेवाला है... वे सब दृश्य बड़े ही आकर्षक ढंग से दिखाये गये थे। इन्द्र वैशाली नगरी को सजाते हैं, कुमारिका देवियाँ माताजी की सेवा करती हैं; माताजी को १६ मंगल स्वप्न आते हैं आदि। पूज्य गुरुदेव के प्रताप से बम्बई नगरी में दस वर्ष के भीतर यह तीसरी बार पंच कल्याणक के अद्‌भुत दृश्य दिखाये जा रहे हैं, जिन्हें देखकर हजारों जिज्ञासु मंत्रमुग्ध हो जाते थे। इस अवसर पर मध्यप्रदेश के काँग्रेस अध्यक्ष श्री मिश्रीलालजी गंगवाल ने गुरुदेव का अभिनंदन करते हुए गुजराती भाषा में एक गीता गाया था कि—

जिननां समोसरणनुं अहीं भाग्य छे ना;
दिव्यध्वनि श्रवणनुं अहीं भाग्य छे ना;
तो ये सीमंधर अने वीरना ध्वनिना
पडघा सुणाय गुरुकहान-प्रवचनोमां....

वैशाख शुक्ला चतुर्थी के प्रातःकाल माताजी के १६ मंगलस्वप्नों का उत्तम फल; देवियों द्वारा माताजी से तत्त्वचर्चा, भक्ति आदि दृश्य हुए थे। दोपहर को मलाड जिनमंदिर में कलश-धवज तथा वेदीशुद्धि हुई थी। रात्रि को श्रीकृष्ण के लघु भ्राता गजकुमार के वैराग्य जीवन संबंधी नाटक प्रदर्शित किया गया था। मोरबी (सौराष्ट्र) की राष्ट्रीयशाला के बालकों ने भक्ति-नृत्य एवं संवाद का अच्छा कार्यक्रम प्रस्तुत किया था।

जहाँ लाखों लोगों की अपार भीड़ और कोलाहल के बीच रास्ते पर चलना भी कठिन हो... ऐसी दौड़धाम के बीच जब लोग महावीरनगर के कार्यक्रम देखते थे तब उन्हें ऐसी शांति का अनुभव होता था मानों बम्बई से दूर-दूर किसी शांतिपूर्ण स्थान में बैठे हों... उसी में वैशाख

शुक्ला पंचमी का वातावरण तो बम्बई के लिये आश्चर्यकारी था। प्रात:काल भगवान महावीर का जन्म हुआ और अद्‌भुत हर्षपूर्ण कोलाहल के बीच धामधूम से जन्मकल्याणक मनाया गया। इन्द्र भक्ति से नाच उठे; सिद्धार्थ महाराजा के दरबार में पुत्रजन्म की मंगल बधाईयाँ बजने लगीं; चारों ओर हर्ष छा गया। वैभवशाली बम्बई नगरी आज सच्चे अर्थ में वैभवशाली बन गई। इन्द्रराज ऐरावत लेकर आ पहुँचे और धामधूम से जन्माभिषेक की सवारी मेरु पर्वत की ओर चलने लगी। अद्‌भुत जुलूस देखकर नगरजन आश्चर्य में पड़ जाते थे कि—अरे, यह काहे की सवारी निकल रही है!! कौन बैठा है इस गजराज पर!! कौन से महात्मा पधारे हैं?... धीरे-धीरे जन्माभिषेक की सवारी बोरीबन्दर स्टेशन के सामने आज़ाद मैदान में निर्मित मेरुपर्वत की ओर आगे बढ़ रही थी! पूज्य गुरुदेव भी साथ-साथ चल रहे थे। लोगों के हर्षोल्लास का पार नहीं था। ....मेरु पर्वत पर विराजमान भगवान की शोभा अद्‌भुत थी! इन्द्र परमभक्ति से भगवान का अभिषेक कर रहे थे। उस समय 'हेलीकॉपटर' से दो बार पुष्पवृष्टि की गई थी। जिनेन्द्र महिमा के दृश्यों से भक्तजन आनंदित हो रहे थे... भगवान का जन्माभिषेक अत्यन्त उल्लासपूर्ण वातावरण में समाप्त हुआ।

दोपहर को बालतीर्थंकर वीरकुँवर को पालना झुलाने की विधि हुई थी। हजारों भक्तों ने भगवान वीरकुँवर का पालना झुला-झुलाकर अपनी हार्दिक भक्ति व्यक्त की थी।

रात्रि को 'जैन कला केन्द्र, टूंडला' की मंडली ने भगवान के गर्भ एवं जन्मकल्याणक के दृश्य नृत्य-अभिनय द्वारा प्रस्तुत किये थे जो वास्तव में दर्शनीय थे। जिन्हें देखकर दर्शक हर्षविभोर हो गये थे। रात्रि को सिद्धार्थ महाराजा की सभा और भगवान के विवाह का प्रस्ताव तथा भगवान द्वारा उस प्रस्ताव का अस्वीकार एवं वैराग्य द्वारा बारह भावनाओं का चिंतवन... दृश्य हुए थे।

वैशाख शुक्ला ६ के प्रात:काल लोकांतिक देवों ने आकर भगवान की स्तुति की और उनके वैराग्य का अनुमोदन किया। इन्द्र दीक्षा-कल्याणक मनाने के लिये पालकी लेकर आ पहुँचे। दीक्षा के लिये वनगमन की भव्य रथयात्रा निकली। दीक्षावन में (विल्सन हाईस्कूल, खेतवाड़ी में) अपार भीड़ एवं कोलाहल के बीच भगवान ने चैतन्य की परम शांति में लीन होकर मुनिदशा प्रगट की... धन्य वह मुनिदशा और वह पावन दृश्य! मोहमयी नगरी में निर्मोही मुनिराज को देखकर वैराग्यपूर्ण वातावरण छा गया था। भगवान की दीक्षा के पश्चात् पूज्य

गुरुदेव ने उस मुनिदशा की भावना भायी और उस दशा की परम महिमा अपने प्रवचन में प्रगट की। जिसकी फिल्म सरकार की ओर से भारतीय समाचार चित्र (इंडियन न्यूज रील) के लिये उतारी गई थी... जो कुछ ही दिनों में भारत के समस्त सिनेमागृहों में प्रदर्शित की जायेगी। दीक्षावन में गुरुदेव का धारावाही प्रवचन अद्‌भुत था।

आज वैशाख शुक्ला ६ के दिन बम्बई के झवेरी बाजार स्थित जिनमंदिर की प्रतिष्ठा के १० वर्ष पूरे हो रहे थे, इसलिये मंदिर पर ध्वजारोहण हुआ था। सायंकाल घाटकोपर जिनमंदिर की वेदीशुद्धि एवं कलश-ध्वजशुद्धि हुई थी। रात्रि को 'जिनेन्द्र कलाकेन्द्र, टूंडला' की ओर से भगवान के शेष तीन कल्याणकों (दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष) का नृत्य-अभिनय प्रदर्शित किया गया था जो वास्तव में दर्शनीय एवं सराहनीय था। रीछ द्वारा मुनिभक्ति का दृश्य आनंदकारी था।

वैशाख शुक्ला सप्तमी, बुधवार को मुनिराज महावीर भगवान के आहारदान का पावन दृश्य दर्शकों के हृदय में भक्ति एवं वैराग्य जागृत करता था। मुनिराज का आहारदान देखकर हजारों भक्त उसका अनुमोदन कर रहे थे। आहारदान का सौभाग्य 'इप्का' लेबोरेटरीवाले श्री बलुभाई चुनीलाल शाह को प्राप्त हुआ था और उस अवसर पर उन्होंने ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा अंगीकार करके सराहनीय कार्य किया था। (आजाद मैदान के निकट ही आहारदान की विधि हुई थी।) दोपहर को गुरुदेव के सुहस्त से जिनबिम्बों पर अंकन्यासविधान हुआ था—जिसमें बासठ जिनबिम्बों पर गुरुदेव ने अंकन्यास किया था। विदेहक्षेत्र के बीस तीर्थंकर तथा भरतक्षेत्र के २४ तीर्थंकर—इसप्रकार तीर्थंकर भगवंतों का मेला देखकर प्रसन्नता होती थी। तीन महीने में तीन बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ तथा सौ जितने जिनबिम्बों की स्थापना का होना एक अद्‌भुत महान धर्मप्रभावना है... और ऐसी धर्मप्रभावना पूज्य गुरुदेव के प्रताप से हो रही है। हजारों जीव गुरुदेव के प्रवचनों द्वारा जैनधर्म का वीतरागी संदेश सुनकर अपने को धन्य अनुभव कर रहे हैं!

दोपहर को केवलज्ञानकल्याणक की पूजा एवं समवसरण की रचना हुई थी। पूज्य गुरुदेव ने प्रवचन द्वारा दिव्यध्वनि का सार समझाया था। वे बारम्बार कहते थे कि भगवान ने दिव्यध्वनि में जो कहा, वही बात साक्षात् सुनकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस समयसार में समझायी है और वही बात यहाँ कही जा रही है। आज भी जिनेन्द्र कला केन्द्र टूंडला का सुंदर कार्यक्रम था।

वैशाख शुक्ला सप्तमी (द्वितीय) गुरुवार के प्रात:काल निर्वाणकल्याणक होने के पश्चात् तुरंत मलाड के जिनमंदिर में भगवंतों को विराजमान किया गया। पूज्य गुरुदेव के शुभहस्त से भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई, उस समय मलाड जिनमंदिर में तथा आसपास अपार भीड़ थी। मूलनायक भगवान ऋषभदेव को विराजमान करने का लाभ श्री मणिलाल जेठालाल सेठ और उनके भाईयों ने लिया था। भगवान ऋषभदेव के आसपास भगवान वासुपूज्य एवं भगवान मल्लिनाथ को विराजमान करने का लाभ श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी तथा चंद्रकांत हरिलाल दोशी ने लिया था। तदुपरांत ऊपर के भाग में सीमंधरादि बीस विहरमान भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई थी, जिसमें भिन्न-भिन्न लोगों ने उत्साहपूर्वक प्रतिष्ठा का लाभ लिया था। एक साथ बीस विहरमान तीर्थंकरों की प्रतिष्ठा के अवसर पर लोगों में खूब उल्लास था। ऊपर से हेलीकॉप्टर विमान द्वारा पुष्पवृष्टि हो रही थी। आकाश में से होनेवाली उस पुष्पवृष्टि का दृश्य मनोहर था... ऐसा लगता था जैसे मंदिर के चारों ओर जगमागते हुए रत्नों की वर्षा हो रही हो! जिनेनद्रमहिमा के ऐसे नये-नये दृश्य देखकर आनंद होता था। आज तो मलाड उपनगर का वातावरण बदल गया था, मानों सारा उपनगर जैनों से भर गया हो! इस प्रकार आनंदसहित मलाड जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा पूर्ण हुई। वहाँ विराजमान सर्व जिनेन्द्र भगवंतों को हमारा नमस्कार हो!

दूसरे दिन वैशाख शुक्ला अष्टमी के प्रात:काल पूज्य गुरुदेव घाटकोपर जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा करने के लिये पधारे और हजारों भक्तों ने गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया। मंदिर के प्रांगण में और आसपास बेसुमार भीड़ थी। मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान को विराजमान करने का लाभ श्री मणिलाल जेठालाल सेठ एवं उनके भाईयों ने लिया था; सीमंधरनाथ भगवान को विराजमान करने का लाभ जयंतीलाल बेचरदास दोशी ने लिया था। तदुपरांत ऊपर के भाग में ऋषभादि चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई थी, उसमें भिन्न-भिन्न सद्गृहस्थों ने उल्लासपूर्वक प्रतिष्ठा का लाभ लिया था। एक साथ चौबीस भगवंतों की प्रतिष्ठा के अवसर पर लोगों में खूब उत्साह था। ऊपर से हेलीकॉप्टर विमान द्वारा होनेवाली पुष्पवृष्टि सबको आनंदित कर रही थी। यों तो घाटकोपर उपनगर के आकाश में प्रतिदिन सैकड़ों विशाल वायुयान गुजरते हैं, परंतु जिनेन्द्र भगवंतों पर पुष्पवृष्टि के लिये उड़ते हुए हेलीकॉप्टर को देखकर सारा उपनगर आश्चर्यचकित हो रहा था। सारे उपनगर में जिनेन्द्र

महिमा फैल रही थी।—इसप्रकार घाटकोपर के जिनमंदिर में आनंदपूर्वक जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई। वहाँ विराजमान सर्व जिनेन्द्र भगवंतों को नमस्कार हो!

दोनों उपनगरों में आनंदपूर्वक जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई और मंदिर के शिखर पर कलश एवं ध्वजाएँ चढ़ने से वे सुशोभित हो उठे।

दोपहर को शांतियज्ञ के पश्चात् भगवान की भव्य रथयात्रा निकली और आनंदमय वातावरण के बीच जय-जयकारपूर्वक मंगल-उत्सव समाप्त हुआ। इसके लिये बम्बई नगरी के मुमुक्षुओं को धन्यवाद।

बम्बई मुमुक्षु मंडल के उत्साही अध्यक्ष श्री रमणीकलाल जेठालाल सेठ तथा मंत्री श्री चिमनलाल ठाकरशी मोदी एवं मुकुन्दभाई मणिलाल खारा आदि समस्त उत्साही कार्यकर्ता तथा मलाड के अध्यक्ष श्री धीरजलाल भाईलाल डेलीवाला, एवं घाटकोपर के अध्यक्ष श्री मनमोहनदास छोटालाल गांधी आदि सर्व मुमुक्षुओं ने उल्लासपूर्वक उत्सव की शोभा एवं सफलता में तन-मन-धन से योगदान दिया। मात्र दो-तीन महीने में ही मलाड तथा घाटकोपर दोनों स्थानों पर इतने भव्य जिनालय तैयार हो गये जिन्हें देखकर आश्चर्यानंद होता है।

इस उत्सव के प्रसांगों का सुंदर वर्णन करने का संपादक ने प्रयत्न किया है; परंतु बम्बई के कठिनाई भरे वातावरण के बीच कितने ही कार्यों में वे पहुँच नहीं पाते थे; इसलिये किन्हीं-किन्हीं प्रसंगों का वर्णन बाकी रह जाने की संभावना है।

अंत में हर्षपूर्वक एक जरूरी बात कहना है कि—अहमदाबाद की भाँति बम्बई नगरी में भी—जहाँ एक लाख से भी अधिक जैनों की संख्या होगी—दिगम्बर जैन समाज के इस भव्य प्रतिष्ठा-महोत्सव में बम्बई के श्वेताम्बर जैन समाज ने अत्यंत मध्यस्थता से, प्रेमपूर्वक हो सके उतना सहयोग देकर समस्त जैन समाज का गौरव बढ़ाया है। कहीं भी विसंवाद का नामनिशान नहीं था। यह बम्बई के लिये तथा सारे भारत के जैन समाज के लिये शोभा की बात है, इससे जैन समाज का गौरव बढ़ा है। हम सब भगवान जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करें कि—इसप्रकार सारे भारत में मित्रता का वातावरण फैले और जैनशासन का झंडा गगन में लहराये।

जयजिनेन्द्र

जैनं जयतु शासनम्

ज्ञायकस्वभावी आत्मा

परभावों से भिन्न ऐसे ज्ञायकस्वभावी आत्मा का स्वरूप समझाते हुए पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि—अहो! ज्ञातादृष्टा सवभावरूपी नेत्र, उसमें राग के कर्तृत्वरूपी अग्नि का कण कैसे समा सकते हैं ? ज्ञानचक्षु राग को कैसे करेगा ?

यहाँ ज्ञायकस्वभावी आत्मा पर का तथा रागादि का अकर्ता-अभोक्ता है—वह बात समझाते हैं। ज्ञानस्वभावी आत्मा है, वह अपने ज्ञानभाव से भिन्न अन्य भावों का कर्ता-भोक्ता नहीं। शरीर-मन-वाणी-कर्म आदि जड़ पदार्थों को तो आत्मा कभी नहीं करता तथा उन्हें भोगता भी नहीं। उनको मैं करता हूँ-मैं भोगता हूँ, ऐसा अज्ञान से जीव मानता है परंतु उनका कर्ता-भोक्ता नहीं। पुण्य-पाप जो उसका स्वरूप नहीं, उसे भी ज्ञानभाव से आत्मा करता या भोगता नहीं, मात्र जानता ही है। सर्वविशुद्धज्ञानस्वरूपी आत्मा, वह अपने से भिन्न भावों का करनेवाला या भोगनेवाला नहीं, उस रूप होनेवाला नहीं। कर्मों की बंध-मोक्षरूप अवस्था का आत्मा कर्ता नहीं, आत्मा तो ज्ञाताभावमात्र है। उसका ज्ञान परपदार्थों को तो करता-भोगता नहीं, और व्यवहार संबंधी रागादि विकल्प, उनका भी कर्ता-भोक्ता नहीं। ऐसे सहज ज्ञानस्वरूप आत्मा को श्रद्धा में-अनुभव में लेना, वह धर्म है। ऐसे आनंदमूर्ति आत्मा के ज्ञानस्वभाव में अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व किसप्रकार से है, उसे यहाँ विशेष समझायेंगे।

अज्ञान के कारण जीव चार गति में परिभ्रमण करके दु:खी हो रहा है; उस दु:ख से छुटकारा कैसे हो और परम सुख का अनुभव कैसे प्रगट हो ?—कि अपने सच्चे स्वभाव को जानने पर-अनुभव करने पर सुख प्रगट होता है और दु:ख से मुक्ति होती है। रागादि कार्यों को तथा शरीरादि पर के कार्यों को अपना मानकर, और अपने ज्ञानस्वरूप को भूलकर अज्ञान से जीव चार गति में परिभ्रमण कर रहा है, उससे छूटने के लिये ज्ञानस्वभावी आत्मा जैसा है, वैसा जानना चाहिए। इसलिए वीतरागी संतों ने अलौकिक रीति से उसका स्वरूप समझाया है।

ज्ञानचक्षु के दृष्टांत से आत्मा के ज्ञायकस्वभाव की समझ

आत्मा का स्वरूप ऐसा नहीं कि शरीरादि की क्रिया को या कर्म के उदयादि को करे; ज्ञानस्वरूप आत्मा विशुद्ध ज्ञायकभावमात्र है, उसका ज्ञान परज्ञेयों का कर्ता या भोक्ता नहीं है। आँख का दृष्टान्त देकर आचार्यदेव वह बात समझाते हैं—

ज्यों नेत्र त्यों ही ज्ञान नहीं कारक नहीं वेदक अरे!
जाने ही कर्मोदय, निर्जरा, बंध त्यों ही मोक्ष को॥ (३२०)

जिसप्रकार नेत्र अर्थात् आँख, वह अग्नि को देखती है परंतु उसका वेदन नहीं करती, उसीप्रकार ज्ञान भी आँख की भाँति कर्म को या रागादि को जानता ही है, परंतु उसे स्वयं करता या वेदता नहीं। ज्ञान में विकार का या जड़ का वेदन नहीं। दर्शन और ज्ञान, वह भगवान आत्मा का चक्षु है; वह दर्शन-ज्ञानचक्षु शरीर को या रागादि विकल्पों को नहीं करता। जिसप्रकार आँख द्वारा अग्नि नहीं सुलगती; उसीप्रकार ज्ञानभाव द्वारा पर के अथवा राग के कार्य नहीं होते; जिसप्रकार संधूकण अर्थात् ईंधन वह अग्नि का कर्ता है, और अग्नि से तप्त लोहे का गोला, वह अग्नि की उष्णता का वेदन करनेवाला है, इसप्रकार उसको अग्नि का कर्ता-भोक्तापना है, परंतु उन दोनों को देखनेवाली दृष्टि (आँख), वह तो कहीं अग्नि को करती या भोगती नहीं। आँख यदि अग्नि का वेदन करे तो स्वयं जल जाये। उसीप्रकार शुद्धज्ञान भी रागादि भावों को या कर्म की बंध-मुक्त अवस्था को करता या वेदता नहीं, इसलिए वह अकर्ता तथा अभोक्ता है। आँख यदि अग्नि का कर्ता हो तो वह स्वयं अग्निरूप होकर जल जाये; उसीप्रकार ज्ञानचक्षु यदि रागादि कषाय-अग्नि का कर्ता हो तो वह ज्ञान स्वयं ही राग हो जाये। परंतु शुद्ध ज्ञान तो ज्ञान ही है, उसमें रागादि का कर्ता-भोक्तापना नहीं है।

यहाँ 'शुद्धज्ञान' को जिसप्रकार अकर्ता-अभोक्ता कहा, उसीप्रकार अभेददृष्टि से कहा जाये तो 'शुद्धज्ञान-परिणतिरूप से परिणमन करनेवाला जीव' वह भी रागादि का अकर्ता-अभोक्ता है, वह स्वयं शुद्ध उपादानरूप से उसका कर्ता-भोक्ता नहीं। शुद्धज्ञानपरिणत धर्मी जीव, वह कर्म का या विकार का कर्ता नहीं—भोक्ता नहीं; उसमें तन्मय होकर स्वयं उसरूप परिणमन नहीं करता, परंतु दृष्टि की भाँति ज्ञाता ही रहता है। ऐसे ज्ञानभावरूप परिणमन, वह धर्म है। शुद्धजीव शुद्धउपादानरूप होकर अशुद्ध ऐसे रागादि व्यवहारभावों को नहीं करता।

शुद्धज्ञानरूप परिणमन करनेवाला ज्ञानी जीव अशुद्धभाव में तन्मय नहीं होता, इसलिये उसे करता-भोगता नहीं। इसप्रकार अकर्ता-अभोक्ता ऐसा शुद्धस्वरूप समझने पर आत्मा को धर्म होता है। ऐसा स्वरूप समझकर अपने ज्ञातादृष्टा स्वभाव के सन्मुख होकर रागादि के अकर्ता-अभोक्तारूप से परिणमन करना, वह वीतरागदेव का कहा हुआ मोक्षमार्ग है।

अहो, ज्ञातादृष्टास्वभावरूपी आँख, उसमें राग के कर्तृत्वरूपी अग्नि का कण समा जाये, ऐसा नहीं; क्या आँख में तिनके का समावेश होता है ? नहीं होता। शुभ-अशुभराग, वे तो आग समान हैं, उनका ज्ञानचक्षु में कैसे समावेश हो ? ज्ञानचक्षु उनका कैसे कर्ता हो ? तथा उनका कैसे भोक्ता हो ? वह तो उनसे भिन्न रहकर उनको मात्र जानता है।

जिसप्रकार संधूकण द्वारा अग्नि जलाने की क्रिया आँख नहीं करती, आँख तो उसे जानती है, उसीप्रकार ज्ञेयपदार्थों की क्रिया को आत्मा नहीं करता, वह तो उनको जानता ही है, पुण्य-पाप भी ज्ञान का ज्ञेय हैं, ज्ञान उन्हें जानता ही है परंतु उन्हें करता नहीं। यदि ज्ञान स्वयं पुण्य-पाप का कर्ता हो तो ज्ञान स्वयं पुण्य-पाप हो जाये, भिन्न नहीं रहे;—जिसप्रकार अग्नि को आँख स्वयं जलाये तो आँख भी जल जाये। जिसप्रकार ज्ञानस्वभावी आत्मा पर का या रागादि का कर्ता नहीं, उसीप्रकार वह उनका भोक्ता भी नहीं। ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसे आत्मस्वभाव को श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव में लेना, वह मोक्ष का कारण है।

यह बाह्य आँख दिखाई देती है, वह तो पुद्गल की रचना है; आत्मा तो ज्ञाननेत्रवाला है। नेत्र बाहर की वस्तुओं को आगे-पीछे नहीं करता, तथा जगत का दृष्टा ऐसा आत्मा दृश्यपदार्थों में किसी को आगे-पीछे नहीं करता, स्वयं अपने में रहकर विश्व को देखता ही है। राग भी ज्ञान से भिन्न वस्तु है, दोनों का स्वरूप भिन्न है; यदि भिन्न नहीं हो तो ज्ञान की भाँति राग के बिना भी आत्मा जीवित नहीं रह सकता; परंतु सिद्ध भगवान तो निरंतर राग बिना ही चैतन्यप्राण से जीते हैं। इसलिये राग और ज्ञान एक वस्तु नहीं; इसलिये राग का कार्य ज्ञान में नहीं; ज्ञान राग का कर्ता नहीं है।

अपना स्वरूप समझ में आये ऐसा है

अहो, यह तो भेदज्ञान करके आत्मा का स्वभाव दिखलाते हैं। भाई, तेरे आत्मा को इस भवभ्रमण से छुड़ाने की रीति संत तुझे समझाते हैं। अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर, पर के

कर्तृत्व की मिथ्याबुद्धि से तू अनंत काल दु:खी हुआ; उससे छूटने के लिये यह तेरे सच्चे स्वरूप की बात है। यह अपना स्वरूप है—इसलिये समझ में आये ऐसा है; अभ्यास न होने से कठिन लगता है परंतु रुचिपूर्वक प्रयत्न करने पर सब समझ में आ जाये ऐसा है। अपना स्वरूप अपने को क्यों समझ में नहीं आयेगा ?

आत्मा कैसा है ? अरिहंतों का अपूर्व मार्ग

तेरा आत्मा कैसा है ?—शांत-शीतल अकषायस्वरूप ज्ञातादृष्टा आत्मा है। शांतरस से भरा हुआ ज्ञान, वह कषायों का अकर्ता-अभोक्ता ही है। आत्मा का द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल ऐसा ही है, और उसका अनुभव होने पर जो शुद्ध ज्ञानपर्याय प्रगट होकर आत्मा के साथ अभेद हुई, उस पर्याय में भी रागादि का कर्ता-भोक्तापना नहीं है। राग की शुभवृत्ति उठे, उसका कर्ता-भोक्तापना ज्ञानी के ज्ञान में नहीं, क्योंकि उस शुभवृत्ति के साथ उसका ज्ञान एकमेक नहीं होता परंतु भिन्न ही परिणमन करता है। अरे, राग तो ज्ञान से विरुद्ध भाव है, राग में तो आकुलतारूप अग्नि है, और ज्ञान तो शांतरस में डूबा हुआ है; ज्ञान से विरुद्ध ऐसे राग द्वारा मोक्षमार्ग का होना मानना, वह तो शत्रु द्वारा लाभ मानने जैसा है। भाई ! राग में ज्ञान कभी तन्मय नहीं होता, तो वह ज्ञान, राग का साधन कैसे हो ? तथा राग को वह अपना साधन क्यों बनाये ? अहो, अरिहंतों का अपूर्व मार्ग है, उसमें राग की अपेक्षा ही कहाँ है ? मात्र अंतरस्वभाव का मार्ग... अन्य सबसे निरपेक्ष है।

संधूकण सुलगकर अग्नि होता है, वहाँ आँख कहीं उसे नहीं करती, आँख तो देखती है। अग्नि की लपटों को देखकर आँख उष्ण नहीं हो जाती। यहाँ बाह्य की आँख का दृष्टांत देकर अंतर के ज्ञानस्वभाव को समझाना है; सिद्धांत समझ ले, उसके लिये दृष्टान्त कहलाता है, परंतु दृष्टांत को ही पकड़कर रुक जाये तो मात्र दृष्टांत से कहीं पार हो जाये, ऐसा नहीं; अंतरंग की वसतु को लक्ष में ले, तभी सच्चा ज्ञान होता है। यों तो जगत में कोई द्रव्य अन्य द्रव्य की क्रिया नहीं करता, परंतु यहाँ तो अभी आत्मा के ज्ञायकस्वभाव की बात समझाना है। जिसप्रकार आँख बाह्य के पदार्थों को दूर रहकर देखती है परंतु उन्हें करती नहीं; उसीप्रकार आत्मा के ज्ञानस्वभाव से राग दूर है—भिन्न है—अन्य है। वह राग को तथा शरीरादि की क्रिया

को करे, ऐसा आत्मा के ज्ञान में नहीं है। अज्ञान में रागादि का कर्तृत्व है, परंतु पर का कर्तृत्व तो अज्ञान में भी नहीं है। अज्ञानी मिथ्याबुद्धि से पर का कर्तृत्व मानता है। परंतु भाई! आँख की भाँति ज्ञान जगत को जानता अवश्य है परंतु जगत के कार्यों को नहीं करता; आँख से अग्नि जलाई नहीं जाती, उसीप्रकार आत्मा से जगत के कार्य नहीं होते।

जगत के समस्त पदार्थ स्वतंत्र अपनी-अपनी शक्तिरूप ऐश्वर्यवान ईश्वर हैं; वे स्वयं अपना कार्य करनेवाले हैं; उनके अधिकार के बीच कोई अज्ञान से उनका ईश्वर होने जाये—अर्थात् उनका कर्ता होना चाहे तो वह मिथ्यात्वरूपी भ्रमणा से स्वयं दु:खी होता है।

[गुजराती पुस्तक 'ज्ञानचक्षु' से]

स्वानुभूतपूर्वक होनेवाला सम्यग्दर्शन वह मोक्ष का द्वार है; उसी के द्वारा मोक्षमार्ग खुलता है। उसका उद्यम ही प्रत्येक मुमुक्षु का प्रथम कर्तव्य है और प्रत्येक मुमुक्षु से वह हो सकता है।

स्वानुभूति के लिये

जीव को शुद्धात्मा के चिंतन का रस होना चाहिये। जिसे चैतन्य के स्वानुभव का रस चढ़ता है, उसे संसार का रस उतर जाता है। भाई! अशुभ और शुभ दोनों से तू दूर हो, तब शुद्धात्मा का चिंतन होगा। अभी तो जिस को पाप के तीव्र कषायों से भी निवृत्ति न हो, देव-गुरु की भक्ति, धर्मात्मा का आदर, साधर्मी के प्रति प्रेम—ऐसे शुभ परिणाम की भूमिका में भी जो नहीं आया हो, वह अकषाय चैतन्य का निर्विकल्प ध्यान कहाँ से करेगा? परिणाम को अत्यंत शांत किये बिना अनुभव करना चाहे तो नहीं हो सकता।

चैतन्यचिन्तामणि-रत्नमाला

सहजशुद्धज्ञानानंदस्वभावी परमात्मतत्त्व के सन्मुख होकर उसके ध्यान से प्रगट हुई निर्मल पर्यायरूप जो मोक्षमार्ग-उसके अनेक नामों की माला का वर्णन द्रव्यसंग्रह में किया है; पूज्य गुरुदेव को वह माला अत्यंत प्रिय है। उन नामों के अतिरिक्त अन्य कुछ नाम गुरुदेव ने कहे हैं; उन्हें मिलाकर कुल १०८ रत्नों की माला यहाँ रत्नचिंतामणि-जन्मोत्सव के अवसर पर प्रकाशित कर रहे हैं। इसका प्रत्येक रत्न मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाला है।

१. वही शुद्धात्मस्वरूप है।
२. वही परमात्मस्वरूप है।
३. वह सुखामृत सरोवर के परमहंस - स्वरूप है।
४. वही परम ब्रह्मस्वरूप है।
५. वही परम विष्णुस्वरूप है। (स्वगुणों में व्यापक)
६. वही परम शिवस्वरूप है। (आत्म-कल्याण)
७. वही परम बुद्धस्वरूप है। (ज्ञानस्वरूप)
८. वही परम निज स्वरूप है।
९. वही परम स्वात्मोपलब्धिलक्षण सिद्ध स्वरूप है।
१०. वही निरंजनस्वरूप है।
११. वही निर्मल स्वरूप है।
१२. वही स्वसंवेदन ज्ञान है।
१३. वही परमतत्त्वज्ञान है।
१४. वही शुद्धात्मदर्शन है।
१५. वही परमअवस्थास्वरूप है।
१६. वही परमात्मा का दर्शन है।
१७. वही परमात्मज्ञान है।
१८. वही शुद्धात्मज्ञान है।
१९. वह ध्येयभूत शुद्धपारिणामिकभावरूप है।
२०. वही ध्यानभावनास्वरूप है।
२१. वही शुद्ध चारित्र है।
२२. वही अंतर्तत्त्व है।

२३. वही परम तत्त्व है।
२४. वही शुद्धात्मद्रव्य है।
२५. वही परम ज्योति है।
२६. वही शुद्धात्मअनुभूति है।
२७. वही आत्मप्रतीति है।
२८. वही आत्मसंवित्ति है।
२९. वही स्वरूप-उपलब्धि है।
३०. वही नित्य-उपलब्धि है।
३१. वही परम समाधि है।
३२. वही परम आनंद है।
३३. वही नित्य-आनंद है।
३४. वही सहज-आनंद है।
३५. वही सदानंद है।
३६. वही शुद्धात्म पदार्थ का अध्ययन है।
३७. वही परम स्वाध्याय है।
३८. वही निश्चय मोक्षउपाय है।
३९. वही एकाग्र चिंतानिरोध है।
४०. वही परम बोध है।
४१. वही शुद्ध उपयोग है।
४२. वही परम योग है।
४३. वही भूतार्थ है।
४४. वही परमार्थ है।
४५. वही निश्चय पंचाचार है।
४६. वही समयसार है।
४७. वही अध्यात्मसार है।
४८. वही समता आदि छह निश्चय आवश्यकस्वरूप है।
४९. वही अभेदरत्नत्रयस्वरूप है।
५०. वही वीतराग सामायिक है।
५१. वही परम शरण-उत्तम-मंगल है।
५२. वही केवलज्ञानउत्पत्ति का कारण है।
५३. वही सकलकर्मक्षय का कारण है।
५४. वही निश्चय-चमुर्विध आराधना है।
५५. वही परमात्मभावना है।
५६. वही सुख की अनुभूतिरूप परम कला है।
५७. वही दिव्य कला है।
५८. वही परम अद्वैत है।
५९. वही परम अमृत है।
६०. वही परम धर्मध्यान है।
६१. वही शुक्लध्यान है।
६२. वही रागादि विकल्पशून्य ध्यान है।
६३. वही निष्कल (अशरीरी) ध्यान है।
६४. वही परम स्वास्थ्य है।
६५. वही परम वीतरागपना है।
६६. वही परम साम्य है।
६७. वही परम एकत्व है।
६८. वही परम अभेदज्ञान है।
६९. वही परम समरसीभाव है।
७०. वही अमृतमार्ग है।
७१. वही वीतरागविज्ञान है।
७२. वही भेदविज्ञान है।
७३. वही सम्यक् दर्शन है।

७४. वही सम्यक् आचार है।
७५. वही सर्वज्ञ की परमार्थस्तुति है।
७६. वही परम निष्कर्म है।
७७. वही अकर्तृत्व भाव है।
७८. वही अनेकांत का रहस्य है।
७९. वही स्याद्वाद का सौरभ है।
८०. वही शुद्ध उपादान है।
८१. वही शुद्ध उपयोग है।
८२. वही परमात्मा की सेवा है।
८३. वही शुद्धात्मसन्मुखपरिणाम है।
८४. वही धर्म की पाँच लब्धियाँ हैं।
८५. वही भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति है।
८६. वही औपशमिकादि तीन भाव है।
८७. वही शुद्धचेतना है।
८८. वही सम्यक् पुरुषार्थ है।
८९. वही आनंदमार्ग है।
९०. वही परमात्मा का साक्षात्कार है।
९१. वही सिद्धों को सच्चा नमस्कार है।
९२. वही धर्म की क्रिया है।
९३. वही मोक्ष की क्रिया है।
९४. वही जैनधर्म है।
९५. वही शुद्ध परिणति है।
९६. वही ज्ञान की अनुभूति है।
९७. वही शुद्धनय है।
९८. वही आत्मलब्धि का अवसर है।
९९. वही नियम से कर्तव्य है।
१००. वही कारणपरमात्मा है।
१०१. वही ज्ञानी का कार्य है।
१०२. वही मोह-क्षोभरहित परिणाम है।
१०३. वही भावश्रुत है।
१०४. वही ज्ञायकभाव की उपासना है।
१०५. वही जैनशासन है।
१०६. वही परमेष्ठीपद है।
१०७. वही तीर्थंकरों का मार्ग है।
१०८. वही चैतन्यचिंतामणि-रत्न है।

[उत्तम से उत्तम ऐसे १०८ रत्नों की यह मंगलमाला—कि जिसे पहिनना साधकजीवों को अत्यंत प्रिय है, इस माला द्वारा अपनी भक्ति और आनंद व्यक्त करते हैं... एवं भावना भाते हैं कि हम भी इस मंगलमाला का एक मनका बन जायें। —हरि]

एक क्षण के स्वानुभव से ज्ञानी के जितने कर्म टूटते हैं; उतने अज्ञानी के लाखों उपाय करने पर भी नहीं टूटते। इसप्रकार सम्यक्त्व की और स्वानुभव की अचिंत्य महिमा है।—ऐसा समझकर हे जीव! उसकी आराधना में तत्पर हो।

पूज्य गुरुदेव के उपदेश-रत्नाकर में से लिये गये

८० रत्न

- सिद्ध भगवंत शुद्ध आत्मा को ध्येय बनाकर ही सिद्ध परमात्मा होते हैं।
- चैतन्यचिंतामणि ऐसे निजात्मा के चिंतन से जिनपद का प्रकाश होता है।
- जिसने राग के साथ संधि तोड़ी और उपयोग के साथ संधि जोड़ी, वह साधक है।
- ज्ञानानंदस्वभाव की ओर उन्मुख होना ही भवरोग मिटाने की दवा है।
- तीर्थंकर गगन में केवलज्ञानसूर्य का उदय होने पर मोक्षसाधक भव्यकमल प्रफुल्लित हुए।
- अपने में ही परमात्मपद देखा, उसे भगवान के पास कुछ मांगने की इच्छा नहीं रही।
- अनंता केवलज्ञान और सिद्धपद आत्मा के भंडार में ही भी भरे हैं।
- राग बिना कहीं आत्मा मर नहीं जायेगा, परंतु आनंदमय जीवन से जीवित रहेगा।
- स्वर्ग की प्राप्ति हो, वह धर्म का फल नहीं है, धर्म का फल तो मोक्ष है।
- हे जीवो! तुम सम्यक्त्वादि भावों को साधो... और मिथ्याभावों को छोड़ो।
- हे जीव! मोक्ष में जाने के लिये शुद्धसम्यक्त्व को ही अपना साथी बना।
- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रधारक मुनिवर और धर्मात्मा परम सुखी हैं।
- आनंदस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा जिसकी दृष्टि में न आये—वह कहाँ से सुखी होगा?
- बड़ी भक्तिपूर्वक शुद्धात्मा की आराधना करना, वह जिनवाणी की सच्ची विनय है।
- अनंत गुणस्वरूप आत्मा स्वयं अपने ध्यान द्वारा अनुभव में आता है।

- अशरीरी आत्मा अज्ञान से शरीर का भार लेकर चारगति में भटकता है, वह शरम है।
- देह से भिन्न अशरीरी चैतन्य को देखने से शरमजनक जन्म टल जाते हैं।
- ध्येय ही जिसका मिथ्या हो, उसे सच्चा ध्यान नहीं हो सकता।
- जिसमें धर्म का अवतरण हो, वह सच्चा धर्म-अवतार है।
- सिद्धभगवंतों का स्वरूप लक्ष में लेनेवाले को आत्मा का शुद्धस्वरूप लक्ष में आता है।
- सिद्ध में जो है, वह मेरा स्वरूप है; सिद्ध में जो नहीं है, वह मेरा स्वरूप नहीं है।
- सिद्ध को पुण्य होता है ?—नहीं; तो पुण्य वह आत्मा का स्वरूप नहीं है।
- भेदज्ञान द्वारा निजस्वरूप की पहिचान करके जीव भवसमुद्र को पार करता है।
- शुद्धात्मा की सच्ची श्रद्धा, वह मोक्ष का सिक्का है।
- ध्यानस्थ जैनमुनि, वह स्वयं साक्षात् मोक्षमार्ग है; उन्हें पहिचानने से मोक्षमार्ग की पहिचान होती है।
- जिसके अंतर में राग की और पुण्य-विषयों की इच्छा है, उसे संसार की इच्छा है।
- मोक्ष की भावनावाला पुण्य की इच्छा नहीं करता, क्योंकि पुण्य भी संसार है।
- सर्वज्ञ-वीतरागदेव की पहिचान बिना उनके कहे हुए वीतरागमार्ग को तू कहाँ से साधेगा ?
- केवली भगवान के अतीन्द्रिय सुख की श्रद्धा करनेवाला जीव मोक्ष के निकट है।
- मुमुक्षु अर्थात् मोक्षमार्ग का व्यापारी, वह शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग की इच्छा रखता है।
- जिनोपदेश सुनकर मुमुक्षु जीव उल्लसित होता है और उसकी परिणति अंतर्मुख होती है।
- सम्यक्त्वी के परिणाम शुद्धात्म-सन्मुख हैं; मिथ्यादृष्टि के परिणाम शुद्धात्मा से विमुख हैं।
- हे जीव! सच्चे देव-गुरु की भक्तिपूर्वक उनके कहे हुए धर्म का सम्यक्रूप से आचरण कर।
- तत्त्वार्थश्रद्धान अर्थात् शुद्धात्मश्रद्धान, वह सम्यक्त्व है, वह धर्म का मूल है।
- वीतराग होकर भवसागर से पार हुआ जाता है; राग को साथ रखकर भवसागर से पार नहीं हुआ जा सकता।
- अपना स्वभाव रागरहित; अपने इष्टदेव रागरहित; अपना मार्ग रागरहित।
- सिद्ध भगवंत जिस मार्ग पर चले, उस मार्ग पर चलना ही मुमुक्षु का कर्तव्य है।

- मोक्षहेतु धर्म शुद्ध-अरागीभाव है; राग वह मोक्षहेतु नहीं है, बंधहेतु है।
- शुद्ध जैनमार्ग में गड़बड़ी नहीं चल सकती, वह तो अरिहंतों का मार्ग है।
- भगवान स्वयं भवरहित हैं, और भवरहित होने के पुरुषार्थ का भगवान ने उपदेश दिया है।
- भगवान की वाणी स्वसन्मुखता करती है और परम आनंद को प्राप्त कराती है।
- सम्यग्दृष्टि, वह जिन है—वह सम्यक्भाव द्वारा मिथ्यात्वशत्रु का विजेता है।
- अहा, भगवान की वाणी की मधुरता की क्या बात! और उस वाच्य के महिमा की क्या बात?
- जिनवाणी के वाच्य का मंथन करने से भावश्रुत का अपूर्व आह्लाद अनुभव में आता है।
- भगवान का उपदेश हमारे लिये है; हमारे ऊपर अनुग्रह करके भगवान ने शुद्धात्मा का उपदेश दिया है।
- मैं ही परमात्मा हूँ—ऐसी स्वात्मचिंतन द्वारा आनंद का अनुभव होता है।
- शुद्धात्मप्राप्ति केवलीप्रभु के वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होती।
- वीतरागता द्वारा मोह का क्षय एवं शुद्धात्मा की प्राप्ति, वह जिनवाणी का सार है।
- भाई, तेरे मोक्ष का खेल तेरी पर्याय में होता है; कहीं बाहर जाना पड़े, ऐसा नहीं है।
- पर्याय को शुद्धस्वभाव में लगा... और परभावों को छोड़, उसका नाम मोक्ष।
- तीर्थंकरों द्वारा साधा हुआ और कहा हुआ वीतरागमार्ग संतों ने स्वानुभवपूर्वक प्रसिद्ध किया है।
- वर्तमान में विदेहक्षेत्र में जीवंत तीर्थंकरभगवंत वीतरागमार्ग का प्रकाशन कर रहे हैं।
- विदेहक्षेत्र में जीवंतस्वामी की वाणी सुनकर भरतक्षेत्र में कुन्दकुन्दस्वामी ने मोक्षमार्ग जीवंत रखा है।
- साधक जीव आत्मिक आनंदरस पीते-पीते स्वयं मोक्ष में चले जाते हैं।
- 'जैसा भावै वैसा होवे'—शुद्धात्मा को भाने से आत्मा शुद्ध होता है।
- अंदर की गुफा में गुप्त आत्मा को ध्यान द्वारा अनुभवगोचर करने से गुप्तनिधि प्राप्त होती है।
- आत्मा के शुद्धस्वभाव की धुन बारंबार लगाने जैसी है, उसमें आनंद है।
- आनंदरस पीते-पीते सिद्धभगवान ने मोक्ष को साधा और सदाकाल वे आनंदरस का पान कर रहे हैं।

- मोक्ष और उसका मार्ग, दोनों आनंदमय हैं। आनंद का साधन दु:खरूप कैसे होगा ?
- ज्ञानसुधारस कैसे पियें ?—स्वसन्मुख श्रुतज्ञानरूपी अंजलि द्वारा ज्ञानसुधारस का पान करना चाहिये।
- ध्यान की सिद्धि अर्थात् अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव; यही उपदेश का सार है।
- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगटने में शरीर की या विकल्प की सहायता नहीं है।
- अंतर में शुद्धस्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप निर्मल वीतराग अंश, वह सच्चा मोक्षमार्ग है।
- अहो, ऐसा सरस निरपेक्ष मोक्षमार्ग, उसे हे जीव ! तू जान तो सही !
- सच्चा मोक्षमार्ग जानते ही तुझे राग से आत्मबुद्धि छूट जायेगी और आत्मशुद्धि होगी।
- जिनभगवान के कहे हुए वीतरागमार्ग की तुलना अन्य मार्गों के साथ नहीं की जा सकती।
- जिनरंजन करनेवाले अर्थात् जिनमार्ग को जानकर उसकी रुचि करनेवाले लोकरंजन के हेतु नहीं रुकते।
- कुगुरु की शरण अर्थात् संसार में भ्रमण। जिनशरण अर्थात् सुख में रमण।
- जो राग की रुचि करता है, उसे वीतरागस्वभावी आत्मा की आराधना का लक्ष नहीं है।
- वीतरागमार्ग के आराधक जीव राग की रुचि क्यों करेंगे ? अमृत मिलने पर विष कौन खायेगा ?
- इन्द्रियों और विकल्पों से अगोचर ऐसे अलख आत्मा को अतीन्द्रियज्ञान द्वारा लक्षगत करो।
- शुद्धात्मा का अनुभव, वह मोक्षमार्ग है—ऐसा भाव बारंबार घोंटने जैसा है।
- कारण-कार्य एक प्रकार के होते हैं, इसलिये बुद्धिमान मुमुक्षु शुद्धकारण का सेवन करता है।
- वही सच्चा बुद्धिवंत-भेदज्ञानी है कि जो शुद्ध-अशुद्ध भावों का पृथक्करण करता है।
- मोक्ष के साधक शुद्धस्वभावरूप मोक्षमार्ग में बीच में राग की मिलावट नहीं करते।
- पंचम काल में भी जिसप्रकार मुनिदशा वस्त्ररहित है, उसीप्रकार मोक्षमार्ग रागरहित है।
- सीमंधर भगवान आदि तीर्थंकर भगवंत इस जंबुद्वीप में वर्तमान विराजमान हैं।
- विदेहक्षेत्र के धर्मकर्ता वे जीवन्तस्वामी शुद्धमोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे हैं।
- ज्ञान का सार यह है कि प्रथम शुद्धआत्मा की भावना से भावशुद्धि प्रगट करना।
- ऐसी भावशुद्धि के मार्गदर्शक रत्नचिंतामणि गुरुकहान के चरण में हरि के हजार वंदन।

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ५०] [अंक २८८ से आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

जिसप्रकार व्रतादि विकल्प मोक्ष का कारण नहीं हैं; उसीप्रकार मुनिलिंग का विकल्प भी मोक्ष का कारण नहीं है-इसप्रकार अब आचार्य प्रतिपादन करते हैं—

लिंग देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यते भवात्तस्मात्ते ये लिंगकृताऽऽग्रहा॥८७॥

लिंग देहाश्रित है, और देह में आत्मबुद्धि वही संसार है। अतः जो देहादि लिंग में या रागादि में ममत्वबुद्धि करते हैं, वे संसार से छूट नहीं सकते।

समयसार में आचार्य भगवान कहते हैं कि—आत्मा को देह ही नहीं है, तो फिर देह या देहाश्रित भाव मोक्ष का कारण कैसे हों? पंचमहाव्रतादि मुनिलिंग को या अणुव्रतादि के शुभरागरूप गृहस्थीलिंग को आत्मा का स्वरूप मानकर अज्ञानी उसे मोक्षमार्ग मानते हैं, किंतु वह लिंग, मोक्षमार्ग नहीं क्योंकि अरहंतदेव, देह के प्रति निर्मम होते हुए लिंग को (महाव्रत के विकल्प को) छोड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का ही सेवन करते हैं। भगवान ने तो शुद्ध ज्ञान की उपासना के द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग का सेवन किया और ऐसा ही मोक्षमार्गउ पदेशद्व ाराब तलाया।द्र्व्यलिंगत ोश ारीराश्रितह ोनेस ेप रद्रव्यह ै,इ ससेव ह मोक्षमार्ग नहीं है; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है, क्योंकि वह आत्माश्रित है; अतः हे भव्य! बाह्यलिंग का ममत्व छोड़कर दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग में ही अपने आत्मा को लगा।

जिसको लिंगकृत आग्रह है, वह मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता; किंतु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि दिगम्बर जैन लिंग के सिवा अन्य किसी भी लिंग में मोक्ष हो जाये। मोक्ष प्राप्त करनेवाले को मुनिदशा में शरीर की दिगम्बरदशा ही होती है, यह निरपवाद नियम है; और ऐसे नियम को जानना, वह कहीं लिंगकृत आग्रह नहीं है; किंतु अंतर में जो चैतन्यतत्त्व की आराधना तो नहीं करते और शरीर की दिगम्बरदशा हुई, उसे ही मोक्ष का कारण मानते हैं, उन्हें लिंगकृत आग्रह है; शरीर संबंधी विकल्प छोड़कर, जब स्वरूप में स्थिर होगा, तभी मुक्ति होगी। जैसे जीव-पुद्गल को गति के समय निमित्त धर्मास्तिकाय ही है, उसीप्रकार मोक्ष के साधक मुनि को लिंग तो दिगम्बर शरीर ही होता है परंतु शरीर कहीं मोक्ष का सच्चा कारण नहीं है। मोक्ष का सच्चा कारण तो आत्माश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है। इसलिये अरिहंत भगवंतों ने ऐसे शरीर का ममत्व छोड़कर रत्नत्रय की ही मोक्षमार्गरूप से उपासना की है; और उसी का उपदेश दिया है।

देह तो संसार का निमित्त है। अशरीरी सिद्धदशा के प्रतिपक्षी संसार का आधार (निमित्तरूप में) शरीर ही है; जिसको शरीर का ममत्व है-शरीर मुझे धर्म का साधन होगा ऐसा जो मानता है, वह शरीर से छूट नहीं सकेगा अर्थात् वह संसार से मुक्त नहीं हो सकता और अशरीरी सिद्धपद-परमात्मदशा को प्राप्त नहीं कर सकता।

जो जीव, वस्त्र-पात्र आदि परिग्रहसहित मुनिदशा मानते-मनवाते हैं, उनके तो मोक्षमार्ग के निमित्त में भी भूल है; यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की नग्नदशा या पंच महाव्रत संबंधी शुभ विकल्प, (जो कि मोक्षमार्ग के बाह्य लिंग हैं), उन्हें जो मोक्षमार्ग मानते हैं, उनको भी लिंग का आग्रह है, शरीर का ममत्व है। जिसको शरीर का ममत्व है, वह शरीर से छूटकर अशरीरीदशा कहाँ से प्राप्त कर सकेगा? भाई! यह शरीर ही तेरा नहीं है तो फिर उसमें तेरा मोक्षमार्ग कैसा? देह को जो मोक्ष का साधन मानते हैं, उन्हें देह का ममत्व होता ही है। क्योंकि जिसे मोक्ष का साधन मानेगा, वह उसका ममत्व कैसे छोड़ेगा? मुनिदशा में शरीर नग्न ही होता है, यह बात सच है, किंतु मुनिदशा कुछ नग्न शरीर के आश्रय से है—ऐसा नहीं है; मुनिदशा तो तीनों काल वीतरागभावमय होने से शुद्धात्मा के ही आश्रित है; राग या शरीर के आधार से नहीं है। शुद्धात्मा को जो नहीं जानता, उसे मुनिदशा नहीं होती।

कोई कुतर्क करे कि मोक्षमार्ग, देहाश्रित नहीं है, तो फिर मुनिदशा में शरीर नग्न हो या

वस्त्रसहित हो—उसमें क्या विरोध ? तो उसे ज्ञानीजन उत्तर देते हैं कि भाई ! निमित्त भी उचित ही होता है, निमित्त का मेल होता है, भूमिकानुसार होता है। जिस दशा में जैसा राग न हो, वैसा निमित्त भी नहीं होता। जिसप्रकार सर्वज्ञ सदा वीतराग ही होते हैं, सर्वज्ञ को राग नहीं है; आहार की इच्छा नहीं है तो बाह्य में भी आहार की क्रिया नहीं है; उसीप्रकार मुनि को परिग्रह का भाव नहीं है तो बाह्य में भी वस्त्रादि परिग्रह कभी नहीं होता। ऐसा मेल सहज नियमबद्ध होता है। जितना राग छूट गया, उतने निमित्त भी सहज छूट जाते हैं।

स्वभाव के आश्रित शुद्धरत्नत्रय होता है; जो उसका सेवन नहीं करते और देहाश्रित या रागाश्रित मोक्षमार्ग मानते हैं, उन्होंने शुद्धात्मा को जाना ही नहीं। शुद्धज्ञान का अनुभव वही एक परमार्थ मोक्षमार्ग है, अन्य कोई सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

आत्मा का अनुभव ही मोक्ष का कारण है, इसके सिवा व्रत या लिंग के विकल्प मोक्ष का कारण नहीं हैं—यह बात चलती है।

दिगम्बर लिंग तो शरीर की दशा है, और शरीर वह तो संसार है; शरीर धारण करना वह संसार है, तो शरीराश्रित लिंग मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है ? अज्ञानी मानता है कि यह देह मोक्ष का कारण है। यहाँ श्री पूज्यपादाचार्य स्वामी कहते हैं कि—शरीर वह तो संसार का निमित्त है, मोक्ष का कारण तो आत्मा है, देह तो भव की मूर्ति है, देह का लक्ष तो मोक्ष जाने में बाधक ही है।

अज्ञानी कहते हैं कि—देह निमित्त तो है न ?—तो यहाँ कहते हैं कि हाँ; देह, निमित्त है; किंतु किसका ? संसार का। जो जीव ऐसा मानते हैं कि शरीर की दशा मुझे मोक्ष का कारण होगी तो वह जीव संसार से छूटता ही नहीं। यहाँ तो 'देह है सो भव है'—ऐसा कहकर आचार्यदेव, देह को मोक्ष के निमित्तपने में से निकाल देते हैं; देह तो संसार का ही निमित्त है, क्योंकि जो जीव, देह की क्रिया को अपनी मानते हैं, उन्हें तो देहदृष्टि से संसार ही होता है; इसलिये उनको तो शरीर वह संसार का ही निमित्त हुआ; मोक्ष का निमित्त नहीं हुआ। देह से भिन्न आत्मा के चिदानंदस्वभाव को जानकर, उसमें एकाग्रता द्वारा जो रत्नत्रय की आराधना करते हैं, वही मुक्ति को प्राप्त करते हैं और उन्हीं के लिये शरीर को मोक्ष का निमित्त कहा जाता है। देखो, योग्यता की खूबी ! देह का लक्ष छोड़कर जो आत्मा को मोक्ष का साधन बनाता है, उस जीव को देह, मोक्ष का निमित्त कहा जाता है, और जो देह को ही मोक्ष का साधन मानकर

अटक गये हैं, उनको तो देह संसार का ही निमित्त है।

मुनिदशा में दिगंबरदशारूप लिंग ही निमित्तरूप होता है, वस्त्रादि नहीं होते—ऐसा नियम है, किंतु वह निमित्त ही मोक्ष का कारण होगा—ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि को तो उस शरीर के आश्रय से संसार ही होता है। अज्ञानी मानता है कि शरीर से मोक्ष होता है, यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि शरीर, वही भव है-संसार है। जिन्हें ज्ञानानंदतत्त्व की प्रतीति नहीं है, देह के लक्ष से रुक गये हैं, वे संसार में ही भटकते हैं। व्रतों के विकल्प, मोक्ष का कारण नहीं हैं, शरीर का दिगम्बर वेश भी मोक्ष का कारण नहीं हैं।

प्रश्नः—तो फिर मुनिदशा में वस्त्र होने में कोई आपत्ति तो नहीं है ?

उत्तरः—जो मुनिदशा में वस्त्रादि का होना मानते हैं, उन्हें तो निमित्त की भी खबर नहीं है, उनकी तो बड़ी भूल है। तीनों काल मुनिदशा में दिगम्बर शरीर ही निमित्तरूप होता है, किंतु जो लोग उस दिगम्बर लिंग को मोक्ष का कारण मानते हैं, वे भी निमित्ताधीन दृष्टि के कारण संसार में ही भ्रमण करते हैं।

देहदृष्टि से तो संसार ही मिलता है; अतः जो देह की दशा को मोक्ष का कारण मानते हैं, वे सब संसार के ही आग्रही हैं; निमित्त के आश्रय से मुक्ति माननेवाले निमित्त के आग्रही हैं और निमित्त के आग्रही, वे संसार के ही आग्रही हैं। देह, मोक्ष का कारण है—ऐसा मिथ्या आग्रह छोड़कर, जो श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता द्वारा चैतन्यस्वरूप की आराधना करते हैं, वे ही मुक्ति को-परमात्मदशा को पाते हैं। अरिहंत-भगवंत भी देहाश्रित लिंग का विकल्प छोड़कर रत्नत्रय की आराधना द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं; अतः वही मुक्ति का मार्ग है, लिंग मुक्ति का मार्ग नहीं है—ऐसा निःशंक जानना ॥८७॥

अब लिंग की भाँति उत्तम जाति या कुल भी देहाश्रित है, वह मोक्ष का कारण नहीं है; इसलिये 'हम ब्राह्मण-क्षत्रिय, हम वैश्य, हमारा कुल उत्तम है, जाति उत्तम है, अतः वही मोक्ष का कारण है'—ऐसा जो मानते हैं, वे भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होते—ऐसा आचार्यदेव कहते हैं—

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥८८॥

जाति तो शरीराश्रित है, उस जाति को ही जो आत्मा का स्वरूप मानता है, वह देह को ही आत्मा मानता है; इसलिये 'मैं वैश्य हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ'—ऐसा उसे जातिकृत आग्रह है, वह

जीव भी भव से नहीं छूटता। जो देह के साथ एकत्वबुद्धि रखता है, वह देह के संयोग से कैसे छूटेगा ? भाई ! ब्राह्मण या वैश्य आदि जातियाँ तेरी नहीं हैं, तेरी सच्ची जाति तो चैतन्यजाति है; चेतना ही तेरा सच्चा स्वरूप है; अपनी चैतन्यजाति को पहिचान तो तेरा कल्याण होगा।

धर्मी जानता है कि मैं तो शरीर से भिन्न आत्मा हूँ, चैतन्य ही मेरी जाति है; क्षत्रिय आदि जातियाँ तो शरीराश्रित हैं। शरीर की जाति, वह मैं नहीं हूँ; चैतन्य ही मेरी उत्तम जाति है और उसकी आराधना करना, वही मेरी कुल-परम्परा है—ऐसी प्रतीतिपूर्वक जाति एवं कुल के विकल्प छोड़कर, धर्मात्मा अपने चैतन्यस्वरूप की आराधना से ही मुक्ति प्राप्त करता है।

देखो ! शरीर की उत्तम जाति या कुल, वह मोक्ष का कारण नहीं है—ऐसा यहाँ कहा; इसलिये 'चाहे जो जाति हो, चांडाल कुल में जन्म लिया हो, तथापि मुनि हो सकता है'—ऐसा यदि कोई माने तो उसे भी तत्त्व की खबर नहीं है। मोक्ष प्राप्त करनेवाले को निमित्त की योग्यता कैसी होती है—उसकी उसे खबर नहीं है। जिसप्रकार शरीर की दिगम्बरदशा, वह मोक्ष का कारण न होने पर भी, मोक्ष प्राप्त करनेवाले को निमित्तरूप से तो दिगम्बरदशा ही होती है; अन्य दशा नहीं होती—ऐसा नियम है; उसीप्रकार शरीर की जाति, मुक्ति का कारण न होने पर भी, मोक्ष प्राप्त करनेवाले को निमित्तरूप से तो क्षत्रियादि तीन जातियाँ ही होती हैं; चांडाल जाति उस भव में नहीं होती—ऐसा नियम है।

स्त्रीलिंग में मोक्ष नहीं होता, पुरुषलिंग एवं उत्तम जाति में ही मोक्ष होता है—ऐसा कथन शास्त्र में आता है; वहाँ उस लिंग या जाति को ही आत्मा का स्वरूप मान ले या उसी को मोक्ष का सच्चा साधन मान ले और उससे भिन्न आत्मा को तथा शुद्धरत्नत्रयरूप मोक्षसाधन को न जाने तो वह जीव, देहबुद्धिवाला है; वह मोक्ष प्राप्त नहीं करता-भले ही उसने उत्तम कुल में जन्म लिया हो और पुरुष हो। उत्तम ऐसे चैतन्यकुल को नहीं जाना तो शरीर का कुल क्या करेगा ? इसलिये शरीर से और राग से भिन्न अपनी चैतन्यजाति को जान ॥८८॥

आत्म-प्रकाश

समयसार शास्त्र के परिशिष्ट में श्री अमृतचंद्राचार्य ने 'प्रकाश-शक्ति' का वर्णन किया है, उस पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का यह लेख है। स्वसंवेदनरूप प्रकाश प्रगट करने की ऐसी सुंदर पद्धति संतों ने बतलाई है कि उसके विचार में—मनन में ज्ञान को लगाया जाये तो स्वानुभव का मार्ग अवश्य प्राप्त हो और जन्म-मरण का चक्कर मिट जाये। अत: हे जीव! अपने बल को स्वोन्मुख करके अपने स्वभाव-अस्तित्व की स्वीकृति लाकर पुरुषार्थ की तीक्ष्ण धारा से उस स्वभाव का अपूर्व पक्ष कर।—ऐसा करने से तुझे स्वसंवेदन एवं आत्मिक आनंद का अनुभव होगा।

भाई, तेरा स्वभाव अचिंत्य है, अंतर का आत्मवैभव अनंत सामर्थ्यवान है। क्षेत्र बड़ा हो, इसलिये गुण अधिक और क्षेत्र छोटा हो तो गुणों की कमी—ऐसा नहीं है, शरीर का और आत्मा का आकार क्षेत्र से छोटा-बड़ा कैसा भी हो, प्रत्येक आत्मा में प्रदेश और गुण समान संख्या में ही हैं, कभी कम-अधिक नहीं है। ऐसे गुणों का यह वर्णन है। आत्मा को 'ज्ञानमात्र' कहने पर उसमें मात्र एक ज्ञान नहीं है किंतु ज्ञान के साथ अनंत गुण हैं, वह बतलाकर अनंत शक्तिवान आत्मा की दृष्टि कराना है।

श्रुतज्ञानपर्याय द्वारा अंतरोन्मुख होकर जहाँ चैतन्यस्वभाव को ध्येय बनाया, वहाँ उस का प्रत्यक्ष स्वसंवेदन हुआ, स्वानुभव में आत्मा स्वयं प्रकाशमानरूप से प्रगट हुआ। श्रुतज्ञान में पूर्ण आत्मा अनंत गुणसहित प्रत्यक्ष होकर स्वसंवेदन में आया। स्वानुभव के समय आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में तन्मय होकर स्वयं अपने को स्पष्टतया अनुभव में लेता है, उस वेदन में राग का अभाव है। ऐसा संवेदन करे, तब सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् ज्ञान की विशेष स्पष्टता और चारित्र की विशेष स्थिरता प्रगट होती है।

प्रकाशशक्ति के कारण आत्मा में ऐसा स्वभाव है कि स्वयं अपने स्वसंवेदन से ही

प्रत्यक्ष हो। अरूपी अतीन्द्रिय आत्मा रागादि के अभावरूप एवं अनंत गुणों की शुद्धता के सद्भावरूप स्वसंवेदन में स्पष्ट प्रकाशित होता है। चतुर्थ गुणस्थान में भी ऐसा स्वसंवेदन-प्रत्यक्षपना है; ऐसा हुए बिना आत्मा की सच्ची प्रतीति नहीं होती। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य के ऊपर दृष्टि करने से ऐसा स्वसंवेदन प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन होता है। स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष होने का आत्मा का स्वभाव तीनों काल है, परंतु वह कब प्रगट होता है ?—कि स्वभावोन्मुख हो तब।

अरे, ऐसे आत्मस्वरूप के विचार-मनन में ज्ञान को लगाये तो उसके अनुभव का मार्ग मिले, और जन्म-मरण का चक्कर मिट जाये। अरे, बड़ी कठिनाई से ऐसा दुर्लभ अवसर पाया, उसमें यदि यह बात नहीं समझी तो कहीं भी भवसागर का किनारा नहीं आ सकता। अपनी आत्मवस्तु कैसी है—कि जिसके ऊपर दृष्टि लगाते ही सम्यग्दर्शनरूपी दोज का उदय हो और पश्चात् वह बढ़ते-बढ़ते पूर्ण केवलज्ञान हो! परंतु प्रथम स्वानुभव-प्रत्यक्ष होने का जिसका स्वभाव है, ऐसे आत्मा को दृष्टि में लेना चाहिये। उसे दृष्टि में लेने पर तुरंत आनंदसहित स्वसंवेदन होगा। सम्यग्दर्शन हो और अतीन्द्रिय आनंदसहित आत्मा प्रत्यक्ष न हो, ऐसा नहीं होता। जिसको अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन हुआ ही नहीं। कोई ऐसा कहे कि—सच्ची श्रद्धा है और आनंद नहीं, अथवा ज्ञान तो है किंतु ज्ञान के साथ आनंद नहीं है, तो उसने अनंत गुण के पिंड को प्रतीति में लिया ही नहीं; आत्मा में ज्ञान-श्रद्धा-आनंद आदि सभी गुणों का परिणमन एक ही साथ है। 'सर्वगुणांश, सो सम्यक्त्व'—यद्यपि सम्यक्त्व तो श्रद्धागुण की पर्याय है, परंतु उसके साथ आनंद है, ज्ञान है, प्रत्यक्षत्व है—इसप्रकार सभी गुण एकसाथ परिणत होते हैं; ज्ञान और आनंद को सर्वथा भिन्न माने, अथवा श्रद्धा और आनंद को सर्वथा भिन्न ही माने, उसे अखंड आत्मा का अनुभव ही नहीं है, अनेकांत की उसको खबर ही नहीं है।

आत्मा शुभराग के कारण प्रत्यक्ष हो—ऐसा नहीं है। जिसने राग को आत्मा के संवेदन का साधन माना है, उसने स्वसंवेदनमय प्रकाशशक्तिवान आत्मा को जाना ही नहीं, उसने तो राग को ही आत्मा माना है। अंतर के सूक्ष्म गुण-गुणीभेद के विकल्प में भी ऐसी शक्ति नहीं है कि वह आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन कर सके। ऐसी शक्ति तो प्रकाशगुण में है कि वह परिणत होकर स्वसंवेदन में आत्मा को प्रत्यक्ष करे। ऐसे वैभववंत भगवान आत्मा को जिसने विकल्पगम्य

माना, उसने तो आत्मा का अपवाद—अवर्णवाद किया है। जैसे बड़े राजा को 'भिखारी' कहकर बुलाया जाये तो उसमें राजा का अपमान ही होता है; उसीप्रकार जगत में सबसे बड़ा यह चैतन्यराजा, उसे एक तुच्छ राग द्वारा प्राप्त होनेवाला मान लिया जाये तो उसका बड़ा अपमान है-दोष है, और उस अपराध की सजा संसाररूपी जेल है। भाई, इस संसाररूपी जेल में अनंत काल से तू पड़ा है; अब इस जेल से तुझे छूटना हो तो चैतन्यराजा जैसा है, वैसा ही उसे जान। अरे, अनंत गुण के वैभव से परिपूर्ण चैतन्यभगवान को रागगम्य मानना, वह तो उसे रागी मानने जैसा है। सम्यग्दर्शन ने तो संपूर्ण निज आत्मतत्त्व का स्वीकार किया है, उसमें प्रकाशशक्ति का स्वीकार है; इसलिये राग के बिना ही स्वसंवेदनरूप हो, ऐसे आत्मा को सम्यग्दर्शन ने स्वीकार किया है, रागयुक्त आत्मा को सम्यग्दर्शन ने स्वीकार नहीं किया। सम्यग्दर्शन के आत्मा में अनंत गुण का निर्मल कार्य है, परंतु उसमें रागरूपी कार्य नहीं है।

अरे जीव! एक बार अपने बल को स्वोन्मुख उल्लसित करके अपने पूर्ण स्वभाव का स्वीकार तो कर—ग्रहण तो कर! पुरुषार्थ की तीक्ष्ण धारा से ऐसे द्रव्यस्वभाव का अपूर्व पक्ष कर... उसका उत्साह ला! जो ऐसे स्वभाव का यथार्थ निर्णय करे, उसे स्वसंवेदन हुए बिना नहीं रहेगा। आत्मा का ऐसा स्वसंवेदन, वही धर्म है—मोक्षमार्ग है। राग का अनुभव तो जीव अनादि से कर ही रहा है, वह कहीं धर्म नहीं है। रागादिभावों का अनुभव हो तो कर्मचेतना है, भगवान आत्मा को अनुभव में लेने की शक्ति उसमें नहीं है; किन्तु अंतरोन्मुख ज्ञानचेतना में ही भगवान आत्मा को अनुभव में अंगीकार करने की शक्ति है।

भाई, मुझमें जो शुभराग होता है, उस शुभविकल्प में भी स्वसंवेदन कराने की शक्ति नहीं है, तो फिर आत्मा से भिन्न बाह्य वस्तु में तो स्वसंवेदन कराने की शक्ति कहाँ से होगी? अत: राग की—व्यवहार की—पराश्रय की रुचि को छोड़, तभी तुझे परमार्थ आत्मा अनुभव में आयेगा। निमित्त-व्यवहार का आश्रय छोड़कर द्रव्यस्वभाव का ही आश्रय किया जाये, तभी पर्याय में स्वसंवेदन प्रगट होता है—सम्यग्दर्शन होता है और तभी वास्तव में आत्मा को माना कहा जाता है। ऐसे अनुभव के पश्चात् विकल्प के समय धर्मी को बहुमान का ऐसा भाव आता है कि अहो, तीर्थंकर प्रभु की वाणी सुनने को मिली थी, उसमें ऐसा ही वस्तुस्वभाव भगवान बतलाते थे, संत उस वाणी को झेलकर ऐसे स्वभाव का अनुभव करते थे। ऐसे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु मेरे स्वसंवेदन में निमित्त हैं; इसप्रकार धर्मी को उन्हीं की विनय और बहुमान का

भाव आता है। ऐसे ज्ञानी को परमार्थसहित व्यवहार का और निमित्त का भी सच्चा ज्ञान है। अज्ञानी को एक भी ज्ञान सच्चा नहीं है।

आत्मा दिव्य वस्तु है, अनंत शक्ति का दिव्य वैभव उसमें भरा है; उसकी प्रत्येक शक्ति में दिव्यता है। ज्ञान में ऐसी दिव्यता है कि केवलज्ञान दे; श्रद्धा में ऐसी दिव्यता है कि क्षायिक सम्यक्त्व दे; आनंद में ऐसी दिव्यता है कि अतीन्द्रिय आनंद दे; प्रकाशशक्ति में ऐसी दिव्य शक्ति है कि अन्य की अपेक्षा बिना ही अपने स्वसंवेदन के द्वारा आत्मा को प्रत्यक्ष करे। ऐसी दिव्यशक्तिवान आत्मा को देखे तो दिव्यदृष्टि खिल जाये। अपने आत्मा का वैभव तुझे देखना हो तो अपने दिव्य चक्षु को खोल। बाह्यचक्षु का आश्रय छोड़कर चैतन्य के ज्ञानचक्षु को खोल तो तुझे अपना दिव्य वैभव दिखेगा। चैतन्य दरबार की शोभा कोई अद्‌भुत एवं आश्चर्यकारी है। प्रभु! यह जो कुछ कहा जाता है, वह सब तुझमें ही है। तेरे चिदानंदमय आत्मवैभव की यह बात संत तुझे सुनाते हैं। वाह रे चैतन्य प्रभु, तेरी प्रभुता!! अकेला ज्ञानप्रकाश का पुंज, अकेला आनंद का धाम! ऐसी अनंत शक्ति के धामरूप आत्मा है। वे शक्तियाँ कारणरूप हैं और उस कारण में से कार्य आता है। सच्चे कारण का स्वीकार करने से (अर्थात् उसके सन्मुख होने से) वह केवलज्ञानादि शुद्ध कार्य देता है, ऐसी उसमें शक्ति है। आत्मा का शुद्ध कार्य देने की शक्ति अन्य में नहीं है। अनंत कारणशक्ति से भरपूर अपने चिदानंदस्वभाव में दृष्टि करने से मिथ्यात्व का नाश होता है और उसमें लीन होने से अस्थिरता का नाश होता है। इसप्रकार निर्मल कारण का स्वीकार करने से निर्मल कार्य प्रगट होता। अन्य कोई कारण बाह्य में है ही नहीं।

स्वोन्मुख होने से आत्मा का स्वसंवेदन जिसे प्रगट हुआ, उसमें चैतन्य का वीररस प्रगट हुआ, स्वानुभव का वीर्य प्रगट हुआ, वह कायरता-परभाव को अपने में आने नहीं देता; ज्ञानी को अपनी रक्षा के लिये रागादिक की सहायता नहीं होती। रत्नत्रय के आराधक कोई मुनि समाधिमरण कर रहे हों, तब वैयावृत्त करनेवाले अन्य मुनि चैतन्य के उपदेश के द्वारा उनमें वीरता उत्पन्न करते हैं। किसी समय मुनि को पानी पीने का विकल्प आ जाये तो अन्य मुनि वैराग्यप्रेरक वाणी सुनाते हैं कि—अरे मुनि! अंतर में चैतन्य का अनुपम आनंदरस भरा ही है, उस आनंदरस का पान करो, यह तो स्वानुभव का निर्विकल्प अमृत पीने का अवसर है! यह पानी तो अनंत बार पिया, उससे तृषा नहीं छिपेगी, अत: निर्विकल्प होकर अंदर में स्वानुभव के आनंदरस का पान करो! तब वह मुनि भी दूसरे ही क्षण में विकल्प को तोड़कर निर्विकल्प-

आनंद के समुद्र में डुबकी लगाकर मग्न हो जाते हैं; उस आनंद के लिये अपने आत्मा के सिवा अन्य किसी का अवलंबन नहीं है।

सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के समय जो स्वसंवेदन हुआ, वह प्रत्यक्ष है, उसमें व्यवहार के अवलंबन का अभाव है—ऐसा अनेकांत है। वात्सल्य, स्थितिकरण, प्रभावना आदि प्रशस्त व्यवहार का उपदेश शास्त्र में आता है किंतु उन सभी शुभविकल्पों से पार धर्मी को जो अंतरंग में स्वसंवेदनप्रत्यक्ष की परिणति वर्तती है, वही मोक्षमार्ग है। धर्मात्मा को अंतर में नित्य चिदानंदस्वभाव के संवेदन का जो बल है, वह स्वयं प्रकाशमान है, उसमें अन्य किसी की सहायता अथवा अस्पष्टता भी नहीं है। अहा, ऐसे आत्मस्वभाव का जिसे संवेदन हुआ, वह अब परमात्मा से भिन्न नहीं रह सकता, स्वसंवेदन के बल द्वारा अल्प समय में ही केवलज्ञान प्रगट करके वह स्वयं परमात्मा होगा ही, और अनंत सिद्ध भगवंतों के साथ निरंतर अक्षय आनंद में निवास करेगा।

अरे जीव! ऐसे जैनदर्शन में, अर्थात् सर्वज्ञपरमात्मा के पंथ में तूने जन्म लिया और सर्वज्ञदेव कथित अपने पूर्ण स्वभाव को यदि तू लक्ष में भी न ले तो तुझे क्या लाभ! तेरा ऐसा अवसर व्यर्थ चला जायेगा। निजस्वभाव में जो वैभव भरा हुआ है, उसी को श्रद्धा के बल द्वारा खींचकर बाहर निकाल! जिसप्रकार अंदर भरा हुआ पानी फव्वारे में बाहर उछलता है; उसीप्रकार अंदर चैतन्य की शक्ति के पाताल में पानी-(बेहद चैतन्य-विलास) भरा है, उसमें अंतर्दृष्टि करने से पर्याय में वह उछलता है।

आत्मा स्वयं ही अपने प्रगट-स्पष्ट-प्रत्यक्ष वेदन में आये और उसमें परोक्षत्व या अस्पष्टता न रहे, ऐसा उसका प्रकाशस्वभाव है। प्रकाश में अधंकार कैसा? चैतन्यज्योति जागृत प्रकाशमान है, वह कहीं अंध नहीं है कि स्वयं अपने को न जाने।

भाई, तू अपनी प्रकाशशक्ति की प्रतीति करे, विश्वास करे और वह पर्याय में प्रगट न हो—ऐसा नहीं बनता। वर्तमान पर्याय अल्पशक्तिवान होने पर भी अंतरोन्मुख होकर अनंत गुण-रत्नों से भरपूर संपूर्ण समुद्र को प्रतीति में और अनुभव में ले ले—ऐसी अद्‌भुत तेरी शक्ति है। स्वोन्मुख होते ही पर्याय में ऐसी अद्‌भुत शक्ति प्रगट होती है। पर्याय स्वयं एक समय की, तथापि अनंत गुणों के त्रैकालिक पिंड को स्वीकार करे, उस पर्याय की शक्ति कितनी? भगवान! अपनी शक्ति तो देख! जिसके समक्ष दृष्टि करने से अमृत प्रवाहित होने लगे—ऐसे तेरे वैभव की बात

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने कही है। भगवान ने जैसा आत्मा देखा, वैसा ही बतलाया है; तू स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष अवलोकन कर सके ऐसी तुझ में शक्ति है। समयसार के प्रारंभ में ही आचार्यदेव ने कहा था कि हम स्वानुभवरूप निजवैभव से शुद्धात्मा का स्वरूप कह रहे हैं, तुम अपने स्वसंवेदन से उसे प्रमाण करना—अर्थात् ऐसा प्रत्यक्ष स्वसंवेदन करने की आत्मा में शक्ति है; अत: 'हम नहीं समझ सकेंगे' ऐसी मिथ्याकल्पना छोड़ देना। सिद्ध भगवान की अंतर में स्थापना करके, स्वसंवेदनप्रत्यक्ष से आत्मा को अनुभव में लेना। परोक्ष रहने का तेरा स्वभाव नहीं है, किंतु स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होने का स्वभाव है। अहो, आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है—यह अलौकिक बात है! जिसप्रकार उत्तम हीरे के मूल्य की तो क्या बात, किंतु उनकी रज भी मूल्यवान होती है; उसीप्रकार जगत में श्रेष्ठ ऐसे इस चैतन्य-हीरे का स्वसंवेदन करे उसके आनंद की तो क्या बात, परंतु उसका बहुमान सहित श्रवण-मनन करे तो उसका फल भी अलौकिक है! उसके विकल्प के द्वारा जो पुण्य बँधता है, वह भी उच्च प्रकार का होता है।

स्वयं प्रकाशमान ऐसे आत्मस्वभाव की प्रतीति होने पर पर्याय में उसका परिणमन प्रगट होता है, स्वसंवेदन होता है। गुणी ऐसे स्वभाव के आश्रय से उसका वेदन होता है; किसी निमित्त के आश्रय से, राग के आश्रय से या गुणभेद के आश्रय से उसका वेदन नहीं होता। वर्तमान पर्याय अंतर में तन्मय होकर संपूर्ण स्वभाव को स्वसंवेदन में ले ले, ऐसी उसकी अद्भुतता है, और उसके साथ प्रशांत आनंदरस भी होता ही है।

— दुनिया चाहे जिसप्रकार डोले, सिद्ध भगवान को कोई विकल्प नहीं है, वे तो निजस्वरूप में अडोल-अचल हैं।
— आत्मा का स्वभाव जानने का है, विकल्प करने का नहीं।
— मेरा शांति-धाम मुझमें है, उसमें लीन होने पर शांति है।
— शुद्धात्मा में लीनता, वह संतों का चारित्र है, राग वह चारित्र नहीं है।
— चारित्र धर्म है। राग, वह चारित्र नहीं, अर्थात् राग, वह धर्म नहीं है।
— शुद्धोपयोग आत्मा का प्राण है; उस प्राण का राग के द्वारा घात होता है, अत: राग वह हिंसा है।

सोनगढ़ में

धार्मिक अध्ययन की योजना

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८०वाँ जन्मोत्सव बम्बई में रत्नचिन्तामणि-महोत्सव के रूप में आगामी वैशाख शुक्ला द्वितीया को हर्षोल्लास सहित मनाया जा रहा है। जिसके उपलक्ष में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने धार्मिक अध्ययन की एक योजना बनायी है—जिसकी रूपरेखा निम्न प्रकार है:—

(१) जैनधर्म में रुचि रखनेवाले कोई भी त्यागी अथवा सुयोग्य विद्वान सोनगढ़ में रहकर धार्मिक अध्ययन करें। पूज्य आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रतिदिन श्रवण करते हुए यहाँ चलनेवाले शिक्षणशिविर में रुचिपूर्वक अभ्यास करें और जो विषय अभ्यासक्रम में रखे जायें, उनमें निपुणता प्राप्त करें।

(२) इसप्रकार जो विद्वान या त्यागी नियमितरूप से दो महीने तक उपस्थित रह सकते हों, उनके लिये यहाँ निवासस्थान एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था कर दी जायेगी। तदुपरांत जिन्हें आने-जाने के लिये मार्ग-व्यय की आवश्यकता मालूम होगी, उन्हें वह भी दिया जायेगा।

(३) शास्त्राभ्यास में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें धर्मप्रचारार्थ बाहर भेजा जायेगा। वहाँ वे, पूज्य स्वामीजी जिन जैनसिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं, तदनुसार उपदेश जैन जनता को दें, शिक्षणशिविर खोलें और उनमें विद्यार्थियों एवं प्रौढ़ों को धार्मिक अभ्यास करायें।

(४) जो गृहस्थ विद्वान प्रचार कार्य हेतु जायेंगे, उन्हें योग्यतानुसार वेतन भी दिया जायेगा।

(५) अनुकूल समय पर ऐसे शिक्षणशिविर यहाँ सोनगढ़ में खोले जायेंगे और वे कम से कम दो महीने तक चलेंगे। इसप्रकार वर्ष में तीन बार शिविरों का आयोजन किया जायेगा। फिलहाल दो वर्ष के लिये यह योजना बनायी जा रही है। ऐसा पहला शिक्षणशिविर संभवत: मई महीने में प्रारंभ हो जायेगा।

(६) जो सज्जन उपरोक्त योजना का लाभ उठाना चाहें, वे अपनी शिक्षा (धार्मिक तथा लौकिक), उम्र, वर्तमान कार्य आदि का संपूर्ण विवरण देते हुए निम्नोक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।—जिन्हें पसंद किया जायेगा, उन्हें उचित समय पर सूचना दी जायेगी और तब उन्हें यहाँ आना होगा।

नवनीतलाल सी. जवेरी
प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सोनगढ़
तारीख ४-१-६८

—: विज्ञप्ति :—

श्री समयसारजी शास्त्र (हिन्दी) की तृतीय आवृत्ति प्रकाशित करने की माँग अनेक जिज्ञासुओं की ओर से आ रही है। मुमुक्षुओं से निवेदन है कि—जिन्हें जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो, उसकी सूचना अपने नाम-पते सहित भिजवा देवें। पर्याप्त संख्या में आर्डर आ जाने पर छपाई की व्यवस्था की जायेगी।

पता:—
दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सच्चा सुख

आत्मा में सुख नामक गुण है, अपना सुख अपने में से ही प्राप्त किया जाता है, परद्रव्य-क्षेत्र-काल और परभावों के द्वारा कभी भी सुख मिले, यह मानना केवल दु:खी होना है। मिथ्यात्व, आकुलता, दु:ख; इच्छा के अभाव का नाम सुख है और उसकी विपरीतदशा दु:ख है। अपने द्वारा की गई भूल से अपने को दु:ख होता है; शरीर को या शरीर में दु:ख नहीं है।

आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी ने प्रश्न उठाया है कि जीव दु:खी क्यों हैं और दु:ख कैसे छूट सकता है ?

उत्तर में सरल ढंग से समझाया है कि—जीव इसलिये दु:खी है क्योंकि वह चाहता है कि जैसी मैं इच्छा करता हूँ, वैसा ही सर्वत्र होने लगे; शरीर, धन, कुटुम्ब, समाज आदि मेरी इच्छा के अनुरूप परिणमन करने लग जायें; इसप्रकार पर को इष्ट-अनिष्ट मानने की श्रद्धा होने से कर्ताबुद्धि में सावधान है; मैं पर में भिन्न नित्य ज्ञाता ही हूँ, ऐसे अपने स्वरूप को नहीं जानता, इसलिये पर को अनुकूल देखने की चाह करता है; इच्छानुसार परिणमन नहीं होता, तब दु:खी होता है—तब दूसरों के प्रति द्वेष-निंदा या स्तुति और अनुकूलता की चाह करनेरूप मानसिक चेष्टा द्वारा नये-नये दु:ख मोल लेता रहता है। यदि सच्ची समझ से तत्त्वों को जाने कि—विश्व के समस्त पदार्थ अपने आपमें पूर्ण हैं, स्वतंत्र हैं, कोई पदार्थ किसी के आधीन नहीं है, ऐसा माने तो स्वसन्मुख अपने पूर्ण एकत्व निश्चयपद को देखने पर सुखी ही हो; किंतु स्वरूप में असावधान जीव निमित्ताधीन दृष्टि द्वारा पर में कर्तृत्व-ममत्व-स्वामित्व की भावना द्वारा ज्ञातापना का तिरस्कार ही करता है। कर्मचेतना, कर्मफलचेतना, अज्ञानचेतनारूप व्यवहार में लीन जीव निर्मल तत्त्वज्ञान और स्वतंत्र वस्तु का श्रवण, ग्रहण और धारण भी नहीं करता।

वस्तु नित्य परिणामी है, उसका आश्रय करने और सुखी शांत बनने का उपाय यही है कि इन सबका परिणमन स्वतंत्र उनकी योग्यतानुसार ही होता रहेगा, हम तो केवल ज्ञाता हैं, हम क्या कर सकते हैं; हम मात्र दर्शक बने रहें, रागदशा रहे, वहाँ तक भूमिका के योग्य राग आता है, किंतु किसी भी प्रकार के राग-द्वेष-मोह, कर्तृत्व, ममत्व करनेयोग्य नहीं है। हम तो

मात्र सर्वत्र सदा दर्शक बने रहें, पर के कर्ता, धर्ता स्वामी न बनकर नित्य स्व के स्वामी बने रहें। नित्य अपनी ज्ञानचेतना के स्वामित्वरूप ही परिणमन करनेवाला हूँ—ऐसा भावभासन करने से सच्ची श्रद्धा के अपूर्व बल द्वारा गृहस्थ सम्यग्दृष्टि भी आंशिक सच्च सुखी है। श्रद्धा में वह किसी का स्वामी नहीं बनता, सभी विपरीत मान्यताओं के निषेधरूप, ज्ञायक में दृढ़तारूप ही रहता है, इसलिये उसे जिनेश्वरदेव का लघुनंदन कहा गया है। अरहंत, सिद्ध भगवान जो मोक्षतत्त्व हैं, वे पूर्ण सुखी हैं, क्योंकि उनके पास नाममात्र भी राग नहीं है। अतएव हमारी विपरीत मान्यता ही दु:ख का कारण है, ज्ञायकस्वभाव के आश्रित सच्ची मान्यता सुख का कारण है। स्वद्रव्य का अनुसरण सुख है, परद्रव्य का अनुसरण दु:ख है।

निज वैभव का अनुभव होने पर...

निज वैभव का अनुभव होने पर यथार्थ वस्तुस्थिति की मर्यादा सम्यग्दृष्टि ने ऐसी मानी है कि चैतन्यसीमा में परभावों का प्रवेश किंचित् भी नहीं है। चैतन्य के द्रव्य में, गुण में या निर्मलपर्याय में कहीं पर भी परभाव नहीं हैं, परंतु परभाव के अभावरूप मेरा स्वभाव है। ऐसा स्वभाव वर्तमान में माना, और निरंतर ऐसा ही स्वभाव रहेगा। जैसा वर्तमान, वैसा त्रिकाल। वर्तमान में शुद्धता के अनुभव बिना त्रिकाल शुद्धस्वभाव प्रतीत में नहीं आ सकता। भाई! अपने ज्ञानलक्षण को विस्तृत करके तू अनुभव कर तो आज ही अपना आत्मा तुझे कर्म के तथा विकार के अभावरूप दिखायी देगा, क्योंकि कर्म में या विकार में ज्ञानलक्षण नहीं रहता। ज्ञानलक्षण तो शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय में ही रहता है।

सीमंधर स्वामी का प्राचीन स्तवन

(सं० १४१२)

इस स्तवन के अनुसार श्री सीमंधरस्वामी, जो यहाँ से २० कोड मील उत्तर भूभाग में पूर्व विदेहक्षेत्र में विहरमान-विद्यमान बीस तीर्थंकरों में एक हैं। उनका जन्म पुण्डरीकिनी नाम की नगरी में, जो इस भरतक्षेत्र के १७वें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और १८वें तीर्थंकर अरहनाथ के मध्यकाल में हुआ था। उनका शासन अभी चल रहा है और वे सीमंधरनाथ भगवान भरतक्षेत्र की आगामी चौबीसी के ७वें तीर्थंकर के उदय के समय में मोक्ष-(सिद्धपरमात्मपद को) प्राप्त करेंगे।

स्तवन में भक्तिभाव पूर्णरूप से विद्यमान है। कवि ने लिखा है कि मेरुगिरि के उत्तुंग शिखर, गगन के टिमटिमाते तारागण और समुद्र की तरंग-मालिका, सीमंधरस्वामी के गुणों का स्तवन करते ही रहते हैं; भगवान का स्तवन, अशुभ कर्मों से उत्पन्न मल-पटलों को गलाने में पूर्ण समर्थ कारण है। जिननाथ का दर्शन करने से जन्म सफल हो जाता है। (भेदविज्ञान सहित) ध्यान लगाने से संसिद्धि मिलती है।

नोंध:—यह स्तवन 'Ancient Jaina Hymns' में पृष्ठ १२०-२४ पर प्रकाशित हो चुका है।

'भरह-खित्तंमि सिरि-कुंथ-अर अंतरे,
जम्म पुंडरिंगणी, विजय पुक्खलवरे।
भाविए उदय जिणि सत्तमे सिव-गए,
बहुअ-कालेण सिद्धिं गमी सामिए।'

वही पद्य १६-१७ Ancient Jaina Hymns, PP. 89-90.

यह स्तवन निम्न प्रकार है—देखो, 'हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि' (पृष्ठ ४०-४१-४२)

(राग-कडखा)

मेरुगिरि-सिहरि धय-बंधां जो कुणई,
गयणि तारा गणइ, वेलुआ-कण मिणइ।

चरम-सायर-जले लहरि-माला मुणइ,
सोवि नहु, सामि, तुह सव्वहा गुण थुणइ,
तहवि जिण-नाह, निय जम्म सफली-कए,
विमल-सुह-झाण-संधाण-संसिद्ए
असुह-दल-कम्म-मल पडल-निन्नासणं,
तात, करवाणि तुह संथवं बहु-गुणं॥२-३॥

अब कहते हैं कि—सुर-भवनों में गगन, पाताल और भूमंडल में, नगरी, पुरी, नीरनिधि (-समुद्र) और मेरु पर्वत कुलों में, देव-देवियों के समूह, नारि-नर और किन्नर, सीमंधरस्वामी के आदरपूर्वक गीत गाते हैं:—

सुर भवणि, गयणि, पायालि, भूमंडले,
नयरि, पुरि, नीरनिहि, मेरु-पव्वय-कुले।
देव-देवी-गणा, नारि-नर-किन्नरा,
तुह्य जस, नाह, गायंति सादर-परा॥७॥

पश्चात् कहते हैं कि—वे नगर धन्य है, जिनमें भव्यजनों के साथ संशयों को हरनेवाले सीमंधरस्वामी विहार करते हैं। भगवान कैसे हैं ? कामघट, देवमणि और देवतरु के समान हैं, अनुपम हैं। (प्रसन्नचित्त से) उनका नाम लेने मात्र से ही सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, इस अर्थ का काव्य:—

धन्न ते नयर जहिं सामि सीमंधरो,
विहरए, भविअ-जणसव्व संसय हरो।
कामघट देव-मणि, देव-तरु णलियउ,
तीह घरि जीह रहिं, सामि, तउ मिलियउ॥१३॥

अब भक्त कवि की तीव्र इच्छा है कि अल्प काल में देवपर्याय के पुण्य-वैभव मिलेंगे किंतु उसमें मग्न न होकर पूर्व विदेह क्षेत्र में स्वयं जाकर वह सीमंधरस्वामी के चरणों में बैठकर, उनका दिव्य उपदेश सुनेंगे, स्वामी के तत्त्वज्ञान सहित गुणग्राममय गीत गायेंगे, उनके बाह्य-अभ्यंतररूप को देखकर प्रसन्नता सहित स्वामी के शासन में भगवतीदीक्षा लेने की भावना भाकर देवपर्याय पूर्ण करके मानव पर्याय में आकर अतिशीघ जिनसम निर्ग्रंथ दीक्षा अंगीकार कर लूँगा ही, जिससे मुझे पूर्ण विश्वास है कि कर्मकलंक रहित होकर केवलज्ञान-लक्ष्मी सहित मोक्षदशा को प्राप्त करूँगा, ऐसे अर्थ में काव्य है—

कर-जुअल जोडी करी, वयण तू निसुणिसो,
बाल जिम हेल देइ, पाय तूह पणमिसो।
सहुर सरि तुम्ह गुण-गहण हउं गायसो,
निय-नयणि रूव रोमंचिउ जोइसो।
तुम पासि ट्ठिउ, चरण परिपालिसो,
हणिअ कम्माणि, केवल-सिरिं पामिसो॥१४-१५॥

❀ ❀ ❀

भोगपद राजपद, णाणपद संपदं,
चक्कि पद, इन्द्र-पद, जाव परमंपदं।
तुज्झ भत्तीइ सव्वं पि संपज्जए,
एह माहप्प तुह सयल जगि गज्जए॥१९॥

इस स्तवन में २१ पद्य हैं, इस छंद का नाम 'आवलि' दिया है।

प्राचीन सीमंधर जिनस्तवन (२)

इस स्तवन में ३१ पद्य हैं, इसकी भाषा में माधुर्य, भावों में सौम्यता और सादृश्य वर्णन में प्रौढ़ता है। दृश्यांकन सफल हुए हैं। पद्मासन पर विराजे श्री सीमंधरस्वामी और उदयगिरि पर सुशोभित सहस्र किरण के सादृश्य उपमान-उपमेय को स्वाभाविक ढंग से ही संघटित किया गया है—

लीजिये यह काव्य-प्रसादी—

त तसु अंतरि रयणिहिं वडिउ सिहासणु झलकंतु,
त पायपीहु तसु तलि विमलोमणि निम्मिउ दिप्पंतु।
त तह सीमंधरु जिणपवरो पउपासण उवट्ठिठु,
त सहस किरण जिम उदयगिरि पुण्ण ति जेहिं सुदिट्ठु॥९॥

चित्रांकन में तो कविजी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। दृश्यों का चित्रांकन कवि की सबसे बड़ी कला है। एक चित्र यह है, 'सीमंधरस्वामी के समवसरण-धर्मसभा में आती हुई सुर-रमणियाँ परिवार सहित सुविमानों में विराजमान हैं। उनके रूप में अद्भुत लावण्य है। उड़ते विमानों में बैठने के कारण देवांगनाओं के शरीर में स्पंदन हो रहा है, और इस भाँति कमर की करधनी हिल रही है, और भक्तिमय मधुर ध्वनि निकलती है। देवियों का हृदय भगवान की

भक्ति से उल्लसित है। वे बड़े उत्साह से दसों दिशाओं में फैलकर भगवान के गीत गाती हुई समवसरण में आयी हैं। कैसे ?—

त रणउणंत किंकिणिरयणि उगगमंत सुविमाण,
त परिवार सुररमणिगणि लवणिमरूव निहाण।
त बहुत भत्ति उल्लसित हिय दस दिसि घणु पसरंत,
त समवसरणि आवइं सयल सामिय गुण गायंत॥११॥

अब काव्य पद्य नं० १५ में उपमा गर्भित रूपक भी बहुत हैं। एक रूपक में लिखा है कि भगवान की दिव्यध्वनि गंगा की उन निर्मल तरंगों की भाँति है, जो संपूर्ण अशुचि को धोती हुई चली जाती है। संसार में जलते हुए जीवों की दाह केवल आपके अमृत से ही शांत हो सकती है और भगवान की दिव्यध्वनि एक अनुपम अमृत के प्रवाह की भाँति ही है। सीमंधरस्वामी की दिव्यध्वनि वर्षा के गरजते उन मेघों की भाँति भी है, जिनकी आवाज सुनकर 'भव्य रूपी मयूरों के चित्त हर्षयुक्त फर-फर नाच उठते हैं।'

लीजिये—

निम्मल ए गंगतरंगचंगु पणासियसयलतमु,
भव-दव ए संभवदाइ फेडण अमियपवाह समु।
सामिय ए तणउ वपाणु जिम जिम गाजइ मेह जिम,
तिमतिम ए भवियण चित्त नाचइ फर फर मोर जिम॥१५॥

अब आराध्य के गुणों पर रीझकर ही निश्चयभक्ति का श्रद्धावान भक्त, भक्त बना है, वह उन गुणों के गीत गाता ही रहता है। कवि श्री मेरुनंदन ने श्री सीमंधरस्वामी की भक्ति - प्रशंसा करते हुए लिखा है, उन जिनेन्द्र भगवान की जय हो, जिनके वचनों में इतना पवित्र अमृतरस भरा है कि उनके समक्ष चंद्र का अमृतकुंड भी तुच्छ-सा प्रतिभासित होता है। भगवान के नेत्र कोमल और विशाल कमल की भाँति हैं। देव-दुन्दुभियाँ भगवान की वीतराग विज्ञानमय महिमा को सदैव उद्घोषित करती हैं। भगवान अनंत गुणों के प्रतीक हैं, और उनका कृपाकटाक्ष मानों पलभर में ही भक्त को संसार-समुद्र से पार कर देता है। भक्त को सर्वज्ञ स्वभाव का पूरा विश्वास है कि ऐसे भगवान को (नयविभाग से) उपादेय जानकर प्रणाम करने से मन निरालंब होकर भ्रमित नहीं होगा।

लीजिये अब भावभक्ति—

जय जिणवर! ससहरहारि वयण!
जय कोमल कमल विशाल नयण!
जय सरस अमियरस सरिस वयण!
जय महिम महियह देवरयण!॥
विलसंत अनंत गुणाण ठाण!
संवच्छर मिच्छियदिन्नदाण!
भवसिंधु तरण तारण समत्थु!
पडियहं आलंबणु देहु हत्थु॥१८-२०॥

(हिन्दी जैनभक्ति-काव्य और कवि नामक ग्रंथ में से साभार उद्धत)

जयपुर में प्रशिक्षण शिविर का आयोजन

वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड के तत्त्वावधान में जयपुर में धार्मिक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन दिनांक २ जून से २१ जून तक किया गया है, जिसमें अध्यापकों को धर्मशास्त्र अध्यापन करने का सैद्धांतिक और प्रायोगिक परिचय कराया जायेगा तथा उनके द्वारा बालकों को धार्मिक अध्ययन का लाभ होगा।

इस अवसर पर श्री पंडित खीमंचदभाई सोनगढ़ और श्री बाबूभाई मेहता फतेहपुरवालों के प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा, प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु पधारनेवाले अध्यापक महानुभावों को ठहरने और भोजन का समुचित प्रबंध संस्था की ओर से है।

शिक्षण संस्थाओं और मुमुक्षु मंडलों से हमारा अनुरोध है कि वे अपने अध्यापकों को प्रशिक्षण हेतु अवश्य भेजें, तथा इसकी सूचना हमें शीघ्रातिशीघ्र दें।

वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की ग्रीष्मकालीन परीक्षायें १७ जून को होंगी। संबंधित व इच्छुक संस्थायें फार्म भरकर ३० मई तक भेज दें। उसके बाद प्राप्त फार्म किसी भी हालत में स्वीकार नहीं किये जायेंगे।

भवदीय—
पंडित हुकमचंद शास्त्री
श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड
ए-४, बापूनगर, जयपुर

विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवान के साथ गुरुदेव का संबंध दर्शानेवाला भावपूर्ण चित्र

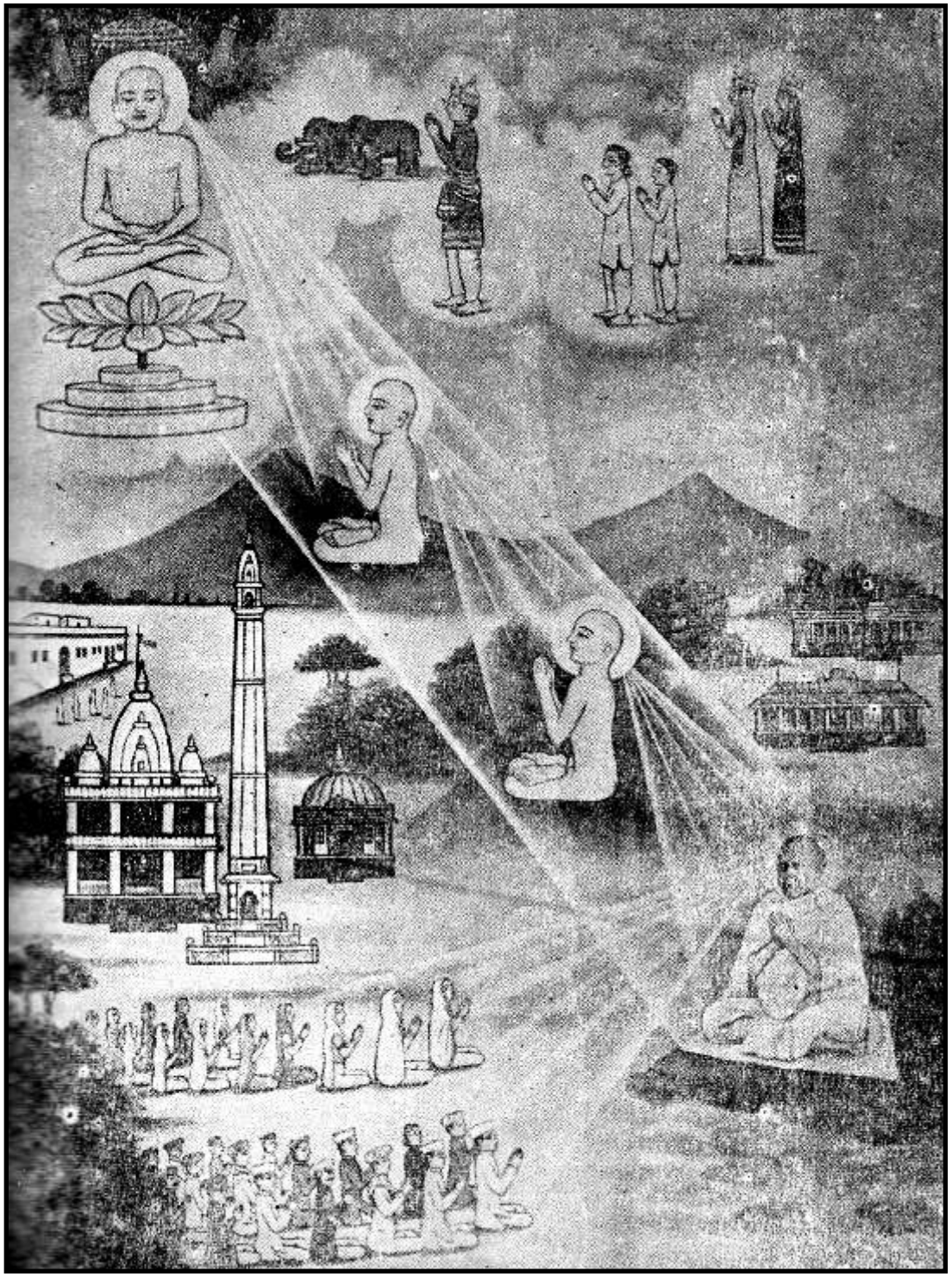

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	,, ,, ,, भाग-२	१.००
	,, ,, ,, भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)